पूज्य श्री चन्द्रप्रभ का पावन मार्गदर्शन

ध्यान का विज्ञान

ध्यान की हर बारीकी को छूने वाली बेहतरीन पुस्तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान का विज्ञान

(ध्यानयोग पर एक समग्र मार्गदर्शन)

श्री चन्द्रप्रभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशन वर्ष : मई 2011

प्रकाशक : श्री जितयशा फाउंडेशन

बी-7 अनुकम्पा द्वितीय, एम.आई.रोड, जयपुर (राज.)

आशीष : गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी म.

मुद्रक : बबलू ऑफसेट, जोधपुर

मूल्य : 30/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रवेश

बारिस थम गई और बादल छँट गए। नीले आकाश में पूर्णिमा का चाँद उग आया।

क्या है यह?

यह है ध्यान का परिपाक! ध्यान पहुँचाता है हमें वहाँ, जहाँ 'कुछ नहीं' है- सिवा शून्य के, परिपूर्ण चेतना के। यह मार्गरहित मार्ग है, द्वाररहित द्वार है। मृत्यु के भय से छूटने के लिए, आनन्द का वरदान पाने के लिए ध्यान आत्म-ज्ञान की चाबी है।

विकल्पों से मुक्त होने के लिए संकल्प है। संकल्पों से ऊपर उठने के लिए ध्यान है। स्वयं की संकल्प-विकल्प-रहित शान्त-सानन्द दशा ही व्यक्ति की पूर्णता है। तब ऐसी घड़ी आती है कि बारिश और बादल विलीन हो चुके होते हैं और नीले आकाश में पूर्णिमा का चाँद मुस्कुरा उठता है। ऐसा होना स्वयं से साक्षात्कार और आनन्द को उपलब्ध होना है।

पुस्तक प्रेम से सपर्पित है उन्हें जो अंधेरे में खड़े प्रकाश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। पुस्तक के शब्द शून्य में विलीन हो जाएँ और हम सबका निस्सीम में प्रवेश।

- चन्द्रप्रभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

ध्यान व्यक्ति की मानसिक शक्ति और आध्यात्मिक मुक्ति का राजमार्ग है। ध्यान के महत्त्व को आज पूरे विश्व ने स्वीकार किया है। अति विकसित कहे जाने वाले देश और भोगवाद की चरम परिणति में जीवन व्यतीत कर रहे लोगों को असीम शान्ति और परम सुख ध्यान में ही प्राप्त हो रहा है। स्पष्ट है कि इस भारतीय विद्या की चमक सम्पूर्ण मानव-जीवन में परिलक्षित हो रही है। दरअसल, ज्यो-ज्यों भोगवाद की ओर मानव उन्मुख होता है, ध्यान उसके लिए अपरिहार्य हो जाता है। आज के तनाव भरे जीवन से मुक्ति अगर मनुष्य को ध्यान से मिलती है तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ध्यान केवल दु:खों से छुटकारा पाने की विधि है। ध्यान तो इससे आगे का रास्ता है- परिपूर्ण चेतना का, दिव्य-शक्तियों की जागृति का। जहाँ मानव की मेधा मुस्कुरा उठती है, आत्मा शून्य की उस परम अवस्था को प्राप्त करती है जो चेतना का सर्वोच्च स्तर है। यानी एक सम्पूर्ण मानव का अभ्युदय। आज इसी मानव की तो जरूरत है सृष्टि को।

ध्यान से मनुष्य का चित्त स्थिर होता है, जो मनुष्य को सुपथ पर लाता है। ध्यान मस्तिष्क में रासायनिक परिवर्तन लाता है जो व्यक्ति को एकाग्रचित होकर संयमी और शान्त बनाता है। ध्यान के सम्बन्ध में हमारे मनीषियों ने बहुत कुछ कहा है। सबकी अपनी-अपनी अवधारणाएँ, मान्यताएँ और रीतियाँ हैं। कोई छोटी-बड़ी नहीं है। क्योंकि सभी हमें जहाँ पहुँचाती हैं, वह स्थान एक ही है। परन्तु संबुद्ध संत श्री चन्द्रप्रभु ने अपनी इस पुस्तक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में ध्यान को लेकर जो विचार प्रवाहित किए हैं वे इसे विज्ञान की भांति पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। विज्ञान में जिस तरह उदाहरण और प्रयोगों से सत्य की पुष्टि की जाती है उसी तरह संतप्रवर ने विभिन्न अध्यायों में ध्यान की गहरी व्याख्या की है। सरल वाक्यों में विषय के प्रतिपाद्य की संपुष्टि पुस्तक की भाषा को रोचक और पठनीय बनाने में सक्षम है, जो ध्यान पर प्रकाशित अन्य अनेक पुस्तकों से विशिष्टता प्रदान करती है।

पुस्तक पढ़ने के बाद लगता है कि कहीं गहरे भीतर एक रोशनी का प्रस्फुटन हुआ है, जो हमें एक नए संकल्प से भर देता है। आत्म-साक्षात्कार का जो अनिर्वचनीय आनन्द साधक को प्राप्त होता है, वैसा पुस्तक का अवगाहन करके मिलता है।

- गुलाब कोठारी
संपादक
राजस्थान पत्रिका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

१.	निजता की खोज	...	१
२.	स्वयं की अन्तर्यात्रा	...	९
३.	ध्यान : व्यक्ति से विश्व की ओर	...	१६
४.	ध्यान के जीवन-सापेक्ष पणिाम	...	२१
५.	ध्यान का प्राण : साक्षी-भाव	...	२७
६.	ध्यान के गहरे गुर	...	३२
७.	ध्यान के जीवंत चरण	...	३९
८.	ध्यान का उदात्त रूप	...	४७
९.	ध्यान से शक्ति का रूपान्तरण	...	५२
१०.	ध्यान : अन्तर्मन का आरोग्य	...	५७
११.	ध्यान का मंदिर : मनुष्य का हृदय	...	६१
१२.	आत्म-बोध : शांति का सूत्रधार	...	७०
१३.	शून्य में समग्रता की खोज	...	७५
१४.	शून्य में शाश्वत के दर्शन	...	८२
१५.	मुक्ति का पाठ : मृत्यु-बोध	...	८७
१६.	ध्यान और कर्म का समन्वय	...	९३
१७.	ध्यान और विश्व का भविष्य	...	९७
१८.	ध्यान : विधि और विज्ञान	...	१०२

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान को जीने का अर्थ यह कतई नहीं है कि आप समाज में नहीं जाएँगे, समाज की गतिविधियों में शरीक नहीं होंगे अथवा व्यवसाय या उत्पादन नहीं करेंगे। ध्यान हम इसलिए करते हैं ताकि हम उत्पादन भी ध्यानपूर्वक कर सकें। ध्यानी व्यक्ति उन लोगों के हितों और जीवन-मूल्यों का ध्यान अवश्य रखेगा जो उसकी उत्पादकता का उपयोग करेंगे। किसी भी कार्य को करते समय सूक्ष्म हिंसा तो अवश्य होगी, लेकिन ध्यानी व्यक्ति के हर कार्य में अहिंसा और निष्ठा का आचरण होगा। तुम छोटे-से-छोटे कार्य को भी इतने उत्साह और ध्यान-पूर्वक सम्पादित करो कि तुम्हारा वह कार्य भी ईश्वर की प्रार्थना का पुष्प बन जाये।

- श्री चन्द्रप्रभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निजता की खोज

मनुष्य का अंतर्जगत चेतना का वह धरातल है, जिससे उसका जीवन और जगत संचालित और प्रकाशित होता है। जो अंतर्जगत का स्वामी है, उसका संसार उतना ही सुकोमल, निस्पृह और आनंद-मग्न होता है, जितना किसी मानसरोवर में खिले हुए कमल के फूल का। अंतर्जगत चेतना का घर है। वह चित्-शक्ति का प्रवाह है; मनुष्य को चैतन्य, जीवंत और ऊर्जस्वित बनाये रखने का आधार है। जिसके हाथ में, जिसकी आँख में अंतर्जगत की संपदा है, वह संसार का सब से अनूठा, सबसे समृद्ध और सुखशांति का स्वामी है।

अंतर्जगत का अपना रस है। उसका अपना स्वाद है, उसका अपना आनंद है। सूरज का प्रकाश बड़ा अर्थ रखता है, लेकिन अंतर्जगत का अपना प्रकाश है। गुलाब के फूलों की महक बेशकीमती है, किंतु अंतर्जगत की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपनी सुवास है। अंतर्जगत यानि हमारा अपना घर, हमारा अपना धरातल, हमारा अपना स्वर्ग, हमारा मुक्ति-का-साम्राज्य। अंतर्जगत की ओर कदम उठाकर हम अपने घर की ओर चलने की ही तैयारी कर रहे हैं। अपने घर में रहने और जीने से बड़ा सुख क्या होगा! अंतर्जगत तो हमारा अपना घर है। एक ऐसा घर, जो अतीत के गलियारों से गुजर कर भी, वर्तमान के द्वार पर दस्तक देकर भी, भविष्य के इंद्रधनुष संजोकर भी, समय के हर शिलालेख से ऊपर है, समयातीत और कालातीत है।

समय मनुष्य में परिवर्तन लाता है, लेकिन सारे परिवर्तनों का प्रभाव पर्यायों पर ही पड़ता है, अणु और अणु-ऊर्जा पर ही पड़ता है। जीवन तो एक धारा है, चेतना की धारा, चित् प्रवाह! जीवन-तत्त्व बड़ा व्यापक है। जन्म से जिसकी शुरुआत हो, मृत्यु पर जिसका समापन, 'जीवन' ऐसा तत्त्व नहीं है। अगर जन्म, मृत्यु इन दो प्रवाहों के बीच की धारा को जीवन की संज्ञा देना चाहें तब तो जीवन की शुरुआत मनुष्य की केवल दो बूँद है और जीवन की समाप्ति चार मुट्ठी राख। जीवन स्वयं ही जीवितता का, जीवंतता का वाचक है। जीवन यानी ऊर्जा, जीवन यानी प्रवाह, एक ऐसा प्रवाह जिसे हम चेतना का अनादि प्रवाह कहेंगे। हम सभी, प्राणी मात्र ही इस चित् प्रवाह के कारण है। अणु में हजार परिवर्तन होते हैं, लेकिन जो चित्-प्रवाह है वह तो हर परिवर्तन के बावजूद चिर नवीन है, अपरिवर्तनीय है। बिजली का उपयोग उष्णता भी देता है, शीतलता भी। जिस यंत्र में, जिस व्यवहार में हम उसका उपयोग करेंगे, वह वैसा ही परिणाम दे जाएगी। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि बिजली ठंडी और गर्म है। बिजली तो, बस है, ऊर्जा की धारा है। हमारे जीवन में बह रही चेतना की ऊर्जा, बस है। उसका होना ही जीवन का होना है। उसका न होना ही हमारा मृत हो जाना है।

चेतना तक पहुँचकर हम वास्तव में अपने आप तक ही पहुँच रहे हैं। देह अपनी जगह है, देह जीवन को अभिव्यक्ति देती है, जीवन की ऊर्जा को थामे रहती है, किंतु देह में विचरण करने वाले प्राणतत्त्व तक पहुँचकर हम जीवन के उस संगीत और आनंद तक पहुँच रहे हैं, जो किसी बाँस की पोंगरी से फूटा करता है। मनुष्य कान्हा के हाथ में रखी हुई मुरली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की तरह है। वह दिखने में एक बाँस का छोटा-सा टुकड़ा है, पर अगर सध जायें अगुंलियाँ, सध जाये सुर, तो बाँस की उस मुरली में रही हुई रिक्तता में वह असीम सामर्थ्य है जो संगीत को जन्म दे सकता है, संगीत का वह मेघ-मल्हार गा सकता है कि बादल बरस पड़ें, कि मृग खिंचे चले आयें, कि आदमी मुग्ध हो चलें।

जीवन संगीतपूर्ण है, जीवन आनंदपूर्ण है, जीवन शांति का धाम और करुणा का मंगल-कलश है। जिसने जगत को देखा, पर अपना अंतर्जगत अनदेखा रह गया, उसका संगीत अपूर्ण है, उसका आनंद क्षणिक है, उसकी शांति में अशांति का दलदल है। उसकी करुणा निमित्तों से प्रभावी है। अपने को सुनकर तुम किसी और को सुनो, तो उस सुनने में जो सुरम्यता और सुकोमलता होगी, वह अनूठी ही होगी। अपने को देखकर सबको देखो तो वह देखना भी हमारे लिए आत्म-दर्शन और ब्रह्म-दर्शन की पहल होगी। स्वयं के रस में अभिभूत होकर तुम किसी रस को चखोगे भी, तो उसका स्वाद भी 'रसो वै सः' का अमृतपान करवायेगा। अपने तक न पहुँचे और सारे जगत तक पहुँच बनायी भी, तो सब तक पहुँचकर कहाँ पहुँचे! चंद्रलोक तक पहुँच भी आये, तो भी क्या पहुँचे अगर अंतरलोक हमारी पहुँच से बाहर रहा। वह सिकंदर होना क्या अर्थ रखेगा जिसकी कब्र पर सिवा अफसोस के शिलालेख ही बन पाये। क्या हमारी जिंदगी केवल साठ-अस्सी या सौ साल की ही है? अगर ऐसा ही है तो महानुभाव, तुम बहुत छोटे हो। तुम्हारे 365 दिन ब्रह्मा के एक दिन के बराबर है। आपके सौ साल ब्रह्मा के दस दिन हुए। अपने दस दिन के इस जीवन के लिए इतनी उठा पटक! यह तो जीवन नहीं हुआ, जीवन के नाम पर करारा व्यंग्य हुआ।

तुम छोटे नहीं हो, तुम्हारी उम्र दस दिन या सौ साल की नहीं है। हम सब तो चेतना के वह प्रवाह हैं, जैसे हिमालय से नदियाँ निकला करती हैं। फिर-फिर बर्फ़ पिघलती है, पानी बहता है, गंगा गंगासागर भी होती है। गंगासागर फिर बादल हो जाता है, पानी बरसता है और यूँ फिर-फिर पानी बर्फ़ हो जाता है। इस सारी प्रक्रिया में, परिक्रमा में, परिवर्तन में पानी का अपना मूल अस्तित्व तो रहता ही है। बच्चे-बूढ़े तो तुम होते हो। तुम होते हो यानी, देह और देह का राग बच्चा-बूढ़ा होता है। देह पैदा होती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है, देह जवां मर्द होती है, देह में झुर्रिया पड़ती हैं। हम जो मूल हैं, वह तो फिर भी अजन्मा ही रह जाता है, वह बूढ़ा कहाँ होता है? वह स्त्री और पुरुष नहीं होता है। वह तो बस एक ऐसा 'है' जो हम मूल में हैं, जो हमारा मूल अस्तित्व है।

हम कौन हैं, हमारा मूल स्रोत क्या है, हमारा स्वाद और सुवास क्या है, हमारा प्रकाश और विकास क्या है, हमें इसकी तह तक पहुँचना है। उस मृत निर्झर तक पहुँचने के लिए, कचरे-कबाड़े को, पत्थर की चट्टानों को हटाना है। हम जो भी हैं, जैसे भी हैं, मृत/अमृत, चंचल/स्थितप्रज्ञ, हमें उसका आविष्कार करना है, जीवन के सनातन विज्ञान की हमें यही प्रेरणा है।

जो हम हैं, जो हमारा प्राण और महाप्राण है, जो हमारा मौलिक जीवन-तत्त्व है, उसके प्रति हमारी अपनी उत्सुकता, हमारी अपनी लगन ही काम आएगी। बीवी, बच्चे, धणी-धोरी ये सब तो अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए ही रोते और प्रेरित करते रहेंगे। हमारे निजत्व तक तो हमें ही पहुँचना होगा। अपने सच्चे स्वरूप के प्रति हमें ही उत्कंठित होना होगा। अपने प्रति होने वाली सजगता जीवन में संबोधि के मंगल कलश की स्थापना है। आखिर हम तक हम ही पहुँच सकते हैं। अंतर्जगत का पथिक व्यक्ति स्वयं ही हो सकता है। स्वयं के अतिरिक्त वहाँ और किसी की पहुँच होती भी नहीं है।

गुरुजनों और ज्ञानीजनों से रास्तों को जान लेना एक अलग बात है, किन्तु जहाँ चलने की बात आती है वहाँ सहायक की सहायता जरूर मिल सकती है लेकिन एक बात याद रखें कि अंततः तो खुद के पाँव से ही चलना पड़ता है। आगे रास्ता इतना संकड़ा है कि 'अप्प दीवो भव', 'एकला चलो रे' सूत्र ही वहाँ सार्थक हो पाता है। रास्ता पार हो गये, शिखर तक पहुँच गये, फिर तुम सारे संसार के हो गए, सारा संसार तुम्हारा आराधक हो गया। चेतना ने चेतना का रूप ले लिया, तो सकल ब्रह्माण्ड की चेतना के साथ तुम एकाकार हो गये दीपक की ज्योति सूरज में जाकर समा गई।

हम में हम ही प्रवेश कर सकते हैं। शब्द और तर्क वहाँ से पलटी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खाकर वैसे ही लौट आते हैं जैसे लहर किनारे से टकराकर लौट जाया करती है। स्वयं की अंतश्चेतना तक शब्द और तर्क का प्रवेश नहीं है। शास्त्र भी वहाँ पर प्रवेश नहीं कर सकता। शुरुआती दौर पर शास्त्र उपकारी होते हैं, पर आखिरी चरण में हम स्वयं ही अपने और दुनिया के शास्त्र हो जाते हैं। अंतर्जगत तक न कोई वस्तु पहुँच सकती है, न माता-पिता और न बीबी-बच्चे, वहाँ तो हम स्वयं ही पहुँच सकते हैं। वस्तु किसी कमरे में रखी जा सकती है, किन्तु हमारे अंतर्जगत में वस्तु को उतारने का, वस्तु को संगृहीत रखने का तरीका नहीं है। वहाँ तो वस्तु के प्रति आसक्ति रखी जा सकती है, वस्तु को नहीं। बीबी-बच्चों के प्रति राग और मूर्च्छा रखी जा सकती है, किन्तु बीबी-बच्चों को नहीं। अंतर्जगत न तो वस्तु है और न व्यक्ति ही है। वह तो अस्तित्व है। वहाँ तो तुम हो, तुम्हारा अपना ही निजत्व का व्यक्ति है। भीड़-भाड़ की जिंदगी में, भीड़ के मनोविज्ञान में हमारे अपने निजत्व की पहचान होना ठीक वैसे ही है जैसे अंधियारे के बीच किसी दीये का ज्योतिर्मय होना है। हर व्यक्ति अपना स्वामी स्वयं बने, अंतर्जगत के साम्राज्य का हर आदमी सम्राट हो। जीवन के विज्ञान की हमें यही प्रेरणा है।

मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने अंत:करण से प्रेरणा प्राप्त करे और स्वयं की अंतस्-प्रेरणा से जीये। जगत में चाहे जितना अंधकार क्यों न हो, अंतर्-प्रेरणा से जीने वाला स्वयं के ही प्रकाश से जीता है। जगत के व्यवहार के लिए सूर्य का प्रकाश है। सूर्य के अभाव में चंद्रमा और टिमटिमाते तारे मनुष्य को उसकी राह दिखाते हैं। अगर ऐसा न हो तो दीपक की रोशनी मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए उपकारी होती है और वह भी न हो तो शास्त्र के शब्द मनुष्य के प्रेरक-तत्त्व बनते हैं। किसी समय याज्ञवल्क्य ने जनक को कहा था, 'वत्स! सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, दीपक, शब्द इनमें से किसी का भी प्रकाश न हो, तो आदमी अपनी आत्मा की ज्योति में जीये, स्वयं के प्रकाश से जीये।'

मनुष्य के अंत:करण से मिलने वाली प्रेरणा उसे सत्य की ओर से मिली प्रेरणा है। जिसकी प्रेरणा और मार्ग सत्यमय है, उसका जीवन स्वत: ही शिवकर, स्वस्तिकर, सुंदरतर होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंगलमय जीवन हो।
सत्यम् शिवम् सुंदरम् सबके
जीवन का दर्शन हो।
मंगलमय जीवन हो॥

मनुष्य जैसा होगा, आईने में वैसी ही झलक आएगी। जीवन में मुस्कान होगी तो आईना भी तुम्हें देख मुस्करायेगा। हमारी उदासीनता में आईना भी उदास और रुग्ण हो उठेगा। एक सुन्दर चेहरे की पहचान यही है कि मुस्कान से जिसके चेहरे की सुषमा और खिल उठे। जिसके मुस्कराने से चेहरा खिल उठे वह चेहरा सुंदर, वहीं मुस्कराने से चेहरा और भद्दा लगने लगा वह चेहरा विकृत।

कहते हैं : किसी व्यक्ति को पहली बार कोई काँच का टुकड़ा मिला। उसने उस काँच में, आईने में झाँका तो उसे लगा कि काँच में जो चेहरा दिखाई दे रहा था, वह उसके पिता का था। बड़ा प्रसन्न हुआ, क्योंकि पिता की याददाश्ती के रूप में उसके पास पिता का कोई चित्र नहीं था। घर पहुँच कर उसने अपने पिता के 'चित्र' को आलमारी में छिपा कर रख दिया यह सोचकर कि उसके पिता के 'चित्र' को फाड़ न डाले। वह सो गया, मगर पत्नी ने उसे आलमारी में कुछ छिपाते देख लिया। पत्नी ने पीछे से वह आईना निकाला और उसमें देखा तो चौंक पड़ी, आग बबूला हो उठी, बुदबुदायी, ओह तो मामला यह है। मेरा पति इस चुड़ैल के चक्कर में....। उसने शीशा उठाया और जोर से जमीन पर दे मारा। पति जग गया। उसे अफसोस हुआ कि इस तरह से उसके पिता की याददाश्ती भी टुकड़े-टुकड़े हो गई। चित्र की मृत्यु हो गई।

आईने में जो दिखाई दिया वह हम ही थे। जिसे हमने पिता, कहा, वह पिता नहीं, हमारी अपनी प्रतिच्छवि थी। जिसे हमने चुड़ैल कहा, वह भी हमारा ही प्रतिबिम्ब रहा। आईने में कोई नहीं था। चुड़ैल का इल्ज़ाम हम पर ही लौटकर आया। आदमी जैसा होता है, उसकी प्रतिक्रिया और प्रतिध्वनि वैसी ही होती है। यह सारा जगत हमारे ही जीवन का विस्तार है और जो जगत से हमें मिलता है, वह हम पर लौटकर आई हुई हमारी ही प्रतिध्वनि है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदि हम अंत:प्रेरणा से जीयेंगे, तो हमारा जगत के साथ ऐसा व्यवहार होगा जिसे हम स्वयं के प्रकाश का प्रतिबिम्ब कहेंगे। स्वयं के प्रति लापरवाह होने के कारण ही, अपने भीतर की प्रेरणा और संदेशों को अनसुना करने के कारण ही मनुष्य का जीवन मूर्च्छित और अज्ञानमूलक बना हुआ है। वह अंतर-बोध से नहीं जी रहा है। मुखौटे पहन लिए गए हैं। हमारा मौलिक स्वरूप हमारे हाथ से छिटक गया है। हम अपनी प्रेरणा से नहीं औरों की प्रेरणा और सलाह से काम कर रहे हैं। हम औरों के चलाये चल रहे हैं औरों के नचाये नृत्य कर रहे हैं। और तो और, शिक्षा-दीक्षा भी हम वही कर रहे हैं जैसी हमें लोग सलाह देते हैं। उस विषय के प्रति हम स्वयं को दृढ़तापूर्वक जोड़ नहीं पाते जिसके प्रति हमारी अपनी रुचि-अभिरुचि होती है, नतीजा यह निकलता है कि आदमी होना चाहता है कुछ, और हो जाता है कुछ। स्वयं की रुचि होती है संगीत के प्रति, पर घर वालों का आग्रह होता है डॉक्टर बने। ऐसी स्थिति में संगीत से जुड़ी आत्मा डॉक्टर बन बैठती है और डॉक्टर की इच्छा रखने वाला व्यक्ति संगीतकार या चित्रकार बन जाता है।

एक बच्चे को क्या होना चाहिये, प्रकृति के घर से उसका लेखा-जोखा उसके साथ ही तय है। किंतु हमारा अहंकार प्रकृति के खिलाफ चलता है। हम यह देखने का प्रयास नहीं करते कि बच्चे की रुचि किस में है। हम अपने बच्चे को अपने हिसाब से बनाना चाहते हैं। उसे या तो जैसा हम चाहते हैं वैसा बनाते हैं या उसे पुश्तैनी धंधा ही सौंपते हैं। व्यक्ति की निजता क्या है, उसका निजत्व और व्यक्तित्व क्या है, हम उसकी जड़ों को खोजने का प्रयास नहीं करते हैं। हमारा अंतस् जिस मार्ग की ओर झुकाव रखता है, अगर उसे बाहर से भी वैसा ही वातावरण, वैसा ही प्रोत्साहन मिले, तो उसका सही और मौलिक विकास होगा। वह दुनिया में आकर कुछ नया कर गुजरेगा। अपनी अस्मिता की स्थापना कर जायेगा।

हर व्यक्ति की निजता अपने आप में एक दूसरे से भिन्न और स्वतंत्र होती है। स्वयं की उस निजता की खोज करना ही जीवन की मौलिकता में स्वयं का प्रवेश है। अंतरमन और अंतर-आत्मा के लिए सजग होना वह अंतर्यात्रा है जिसे हम जीवन की तीर्थ-यात्रा कहेंगे। हम अंत:स्थ हों, अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भीतर हों, जीवन की मूल चेतना की ओर हों। अंतर्जगत में हुई हमारी बैठक हमारे चित्त की चंचलता और उच्छृंखलता को तिरोहित करेगी। देह के विकृत धर्मों से हमें ऊपर उठाएगी। हम जीवन को जीएँगे, जगत में जीएँगे, लेकिन ऐसे जैसे जंगल के घुप्प अंधियारे में दीपक जलता हो, प्रकाश को हाथ में थामे कोई राहगीर गुजरता हो। उसके जीवन में सौंदर्य होगा, समरसता होगी। उसका जीवन उसके लिए आनंद का उत्सव होगा। प्रकृति और परमात्मा के घर से मिला हुआ एक वरदान, एक चैतन्य पुरस्कार!

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं की अन्तर्यात्रा

जीवन-पथ की डगर पर मनुष्य अकेला आया है, जीवन का यह सहज विधान है कि उसे अकेले जाना है। संसार के नाम पर उसके जो संबंध बनते हैं, वह उसके अकेलेपन को भुलाने के लिए, एक से अनेक होने का विस्तार भर है। उपनिषद् कहते हैं : 'स एकाकी न रेमे, एकोऽहं बहु स्याम:' परमात्मा भी एकाकी था, विस्तार की धारा प्रारम्भ हुई और यों एक से अनेक/अनगिनत हो गया। संसार के सर्जन और विस्तार की यही कहानी है।

एक से अनेक में बँट जाना मन की माया का विस्तार है। अनेक से एकत्व में लौट आना स्वयं की स्वयं में वापसी है। मनुष्य अपने जीवन में कुछ भी करे, कर्मयोग उसे करना ही चाहिये। समाज और संसार से विमुख होना धर्म नहीं सिखाता, किंतु हमारे हाथ से हमारा मूल स्रोत छिटकना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं चाहिये। व्यक्ति श्रम करे, सृजन करे, नवनिर्माण और नवविकास में आस्था रखे, किंतु वह संसार के राग-रंग में इतना घुल-मिल न जाये कि स्वयं को ही भूल बैठे, निजत्व के प्रति रहने वाले दायित्वों की उपेक्षा कर बैठे।

हम सबके साथ जीयें, सबसे प्रेम करें, सबकी सेवा करें, किंतु हमें इस बात का सदा बोध रहे आखिर मैं एक हूँ, एकाकी हूँ, सब के साथ रहते हुए भी मैं सबसे अलग हूँ। मुझे जो नाम दिया जाता है वह मैं नहीं हूँ, और जो मैं हूँ उसे नाम दिया नहीं जा सकता। अनासक्ति का फूल खिलाने के लिए यह आधार-सूत्र है।

मैं एक हूँ, मेरा स्वतन्त्र अस्तित्व है। मुझे राग-रंग से ऐसे ही ऊपर उठे हुए रहना है, जैसे माटी के दीये से ज्योति ऊपर उठी हुई रहती है, जल और दलदल से कमल का फूल ऊपर उठा हुआ रहता है। सबके बीच, फिर भी सबसे स्वतंत्र; सबसे संबद्ध, फिर भी सबसे मुक्त। अपने एकाकीपन का बोध जहाँ मनुष्य को मौलिक मनुष्य बनाता है वहीं उसकी आत्म-स्वतंत्रता और मुक्ति के आकाश को भी उन्मुक्त रखता है। तब हम अनुकूलताओं को पाकर अहंकार से नहीं घिरते, प्रतिकूलताओं को पाकर खिन्न एवं विपन्न नहीं होते। जिसे अपने एकाकीपन का बोध है, वह जीवन और व्यवहार की हर उठापटक के बावजूद शांत और सुखी रहता है। घाटा हो या मुनाफा, मिलन हो या बिछोह, सुख का समझौता हो या दुख की दरार, एकत्व-बोध मनुष्य को उसके सदाबहार आनंद से भटकने नहीं देता। जनमानस या परिजनों की ओर से मिलने वाली उपेक्षा, घर-गृहस्थी में घटने वाली प्रतिकूल परिस्थितियाँ हमें प्रभावित नहीं कर पाती हैं। हमारे जीवन में सदा मुस्कान रहती है।

यह बहुत बड़े रहस्य की बात है कि मुस्कान में ही मुक्ति है। कृष्ण ने समता को समाधि का बीज माना और महावीर ने सामायिक को। क्या हम बता सकते हैं कि यह समता और सामायिक क्या है? उसका विधायक रूप क्या है? अनुकूल और प्रतिकूल दोनों हालातों के प्रति उदासीन रहना, समता और सामायिक नहीं है, वरन् हर हाल में प्रसन्न रहना, सिक्के के दोनों पहलुओं में आनंदित रहना - यही समता है, यही सामायिक है। सच

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो यह है कि जीवन को सदा सुखी बनाये रखने का यही गुर है।

मैं-मेरा, तू-तेरा, यह खटपट तो हमारी सुख-शांति को खोखला करती है। हम अकेले आये हैं, हमें अकेले जाना है, तो फिर जीवन के नाम पर जो मध्य-काल मिला हुआ है, उसमें इतनी उधेड़बुन क्यों? हम अपने उस शाश्वत एकत्व का बोध क्यों न रखें? सात जन्मों के सम्बन्धों की दुहाई देते क्यों फिरें? हम मस्त रहें, मस्त। हर हाल में मस्त! कोई साथ है तो भी मस्त और अकेले हैं तो भी मस्त हैं। किसी की इतनी परवाह मत करो, कृपया अपनी ही परवाह करो। किसी के द्वारा गाली दिये जाने पर खुद को क्रोध और आक्रोश की आग में फैंक देते हैं। किसी के द्वारा प्रशंसित होकर क्यों गर्वोन्नत हो जाते हो। किसी की निंदा-स्तुति से स्वयं को प्रभावित किये बिना हमें अपनी निजी प्रगति में विश्वास रखना चाहिये।

अंतर-हृदय में स्वयं के एकाकीपन का बोध स्वयं में ही विकसित हुआ फूल है। एक ऐसा फूल जिसकी सुषमा और सुवास से हमारे जीवन का कण-कण आह्लादित रहता है। एकत्व के बोध में अनायास ही स्वास्थ्य समाया हुआ है। जिसे एकत्व का बोध है, वह सदा स्वस्थ रहता है। अपने अंतर-जगत में वह सदा आनंदित रहता है। संसार में जीने का कैसे आनंद लिया जाता है कोई जरा उससे पूछे जिसने अपने उस एकाकीपन को चीन्हा है, अंतर्यात्रा को जीया है।

अध्यात्म आनंद है, अकेले होने का आनंद। अंतर्यात्रा परम एकाकीपन की यात्रा है। अंतर्यात्रा में और किसी को साथ नहीं ले जाया जा सकता, वहाँ तो एक ही सूत्र काम में आता है, 'एकला चलो रे'। न वस्तु को भीतर ले जाया जा सकता है, न व्यक्ति को; न मकान को ले जाया जा सकता है, न दुकान को, न माता-पिता को ले जाया जा सकता है, न पति-पत्नी को। चित्त को इन सब संबंधों और निमित्तों से अलग हटा लिया जाता है। एकाकी ही वहाँ प्रवेश होता है। गुरु है तो गुरु, शास्त्र है तो शास्त्र, कोई प्रतिमा या आलंबन है तो वे भी। एकाकीपन की अंतर्यात्रा में वे सब भी, उनकी स्मृतियाँ और विनम्रता भी अपने अंतर्जगत से हटा देनी पड़ती है। जीवन की अंतर्यात्रा में केवल तुम ही तुम्हारे संगी होते हो, तुम ही तुम्हारे गुरु, तुम ही तुम्हारे शिष्य होते हो, वहाँ तुम होते हो, तुम्हारे अस्तित्व का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बोध होता है, अंतर्हृदय में विकसित हुआ एकाकीपन का फूल होता है, अंतस् के आकाश में जीने का आनंद होता है।

एकाकीपन की अंतर्यात्रा में दूसरा गौण हो जाता है। एकाकी शब्द का अर्थ है जहाँ एक ही अकेला है। एक के अतिरिक्त और कोई नहीं। एकाकीपन से ही एकाग्रता की स्थिति बनती है। एकाग्रता का अर्थ है- एक है जहाँ आगे, बाकी सब पीछे। हमारा चित्त जब एक ही केन्द्र पर स्थित होता है तब उसे ही हम एकाग्रता कहते हैं। जब हम एकाकीपन की यात्रा में, स्वत्व-बोध की यात्रा में उतरते हैं तो बाहर के लोग बाहर ही रह जाते हैं। उनके प्रति रहने वाली राग-द्वेष की ग्रंथियाँ बाहर ही फेंक देनी पड़ती हैं। अगर हम उनसे उपरत नहीं हो पाते तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम स्वयं की वास्तविक निजता के प्रति उत्सुक हो ही न पाये। भीड़-भाड़ ही हमें रास आती है। दुःख को भी सुख का प्रतिभास मानकर स्वीकार कर लेते हैं।

अंतर्यात्रा में तो बाहर के सारे संबंध बाहर ही छूट जाने चाहिये। जिन क्षणों में तुम अंतर्-ध्यान में उतर रहे हो, तुम्हें सर्व संबंधों के त्याग का संकल्प स्वीकार हो। अंतश्चेतना को हर ओर से अपने में लौटा लो जैसे साँझ पड़ने पर सूरज अपनी रश्मियों को अपने आगोश में समेट लेता है ऐसे ही हम भी अपनी चेतना को लौटा लायें। प्रतिक्रमण हो जाये। मूल स्रोत में उतरना है तो बीच में चट्टानों का क्या काम? अंतर्-सौंदर्य को निहारना है तो बीच में परदों का क्या तुक। अंतर-ज्योति को निहारने के लिए हमें हर आवरण को हटाना होगा। अन्तर्मूर्ति का अनावरण करना होगा। बाहर की बातें याद आती रहेंगी तो इसका अर्थ यह हुआ कि अंतर्यात्रा बाधित हो गई। अंतर्जगत की ओर कदम उठाया और अपशकुन हो गया।

बाहर को बाहर छोड़ो। बाहर की बात कोई अंदर हो तो उसे ऊलीच फैंको। नाका में आया पानी किस काम का। पानी तो तुम्हें निकालना है, भरना नहीं है। भरा तो तब जाता है जब पानी के लिए कोई कुण्डी हो। कुएँ में बाहर का पानी काम नहीं आता। न बाहर का पानी, न बाहर का ज्ञान। कुआँ स्वयं पानी देता है, जीवन स्वयं ज्ञान देता है। एकाकीपन में उतरे हो तो वह स्वतः ही तुम्हें आनंद का उत्सव प्रदान करेगा। तुम्हें तुम्हारे जीवन का सुख, जीवन का वैभव, जीवन का पुरस्कार प्रदान करेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इतिहास के एक प्रसिद्ध संत अनाथी के बारे में कहा जाता है कि जब वह किसी अशोक वृक्ष के तले बैठा था तो श्रेणिक नाम के सम्राट ने उससे पूछा, 'युवा संत, तुम इस उम्र में साधना-लीन हो चुके। क्या तुम्हारे कोई माता-पिता बीबी-बच्चे नहीं हैं?' संत ने एक रहस्यमयी मुस्कान के साथ कहा, 'सम्राट, मैं अनाथ हूँ।' श्रेणिक ने कहा, 'अगर ऐसी बात है तो मैं तुम्हारा नाथ होने को तैयार हूँ। तुम्हें स्वतंत्र राजमहल में रहने और जीने का निमंत्रण देता हूँ।' संत फिर मुस्कराया। श्रेणिक को समझने में देर नहीं लगी कि इस बात की मुस्कान, मुस्कान नहीं, वरन उसके द्वारा नाथ होने की बात पर मारा गया व्यंग्य है। संत इतना-सा ही बोला 'सम्राट, उसे मैं अपना नाथ कैसे बनाऊँ जो स्वयं ही अनाथ है।' संत की बात पर सम्राट चौंका। उसके एक वाक्य ने ही उसका सारा गरूर मटियामेट कर दिया। संत की जगह और कोई होता तो सम्राट की तलवार उसकी गर्दन पर होती। पर सम्राट ने अपने ऊपर काबू रखते हुए कहा, 'जिसके पास अथाह संपत्ति हो, अकूत राज-खजाना हो, राज-रानियाँ और राज-ऐश्वर्य हो, जिसके नाम से दुश्मनों की सेना काँपती हो उसे अनाथ कहना?'

संत अनाथी ने कहा, 'नाथ और अनाथ का जो अर्थ आपने लगाया है, वही चूक मुझसे भी हुई थी। सच तो यह है कि सम्राट मैं भी आपके पड़ोसी देश का राजकुमार हूँ, लेकिन एक बार मैं किसी भयानक रोग से ग्रस्त हो गया। मेरे पिता देश के सम्राट रहे, राजवैद्य, राजमाता, मेरी पत्नियाँ और पुत्र सभी मेरी सेवा में तत्पर थे लेकिन अफ़सोस उनमें से कोई भी मेरी पीड़ा को दूर न कर पाया। उसमें से एक अंश पीड़ा की हिस्सेदारी भी नहीं बँटा पाया। मेरे रोग और मेरी पीड़ा का मैं ही अकेला भोक्ता रहा। सबका नाथ होकर भी, सब मेरे नाथ होकर भी, सम्राट मैंने पाया कि यह राजकुमार अनाथ है। मैंने संन्यास का संकल्प लिया उस वास्तविक नाथ की खोज के लिए जिसे अनाथ की नौबत से गुजरना नहीं पड़ता। आज मैं परम सुखी हूँ। जो स्वयं का स्वामी होता है वह सदा सुखी होता है। जो औरों के पराधीन होकर जीवन जीता है, उसे अंततः दुखों का ही सामना करना पड़ता है। ठीक वैसे ही जैसे मैंने किया। कहो सम्राट! क्या तुम या कोई और किसी का नाथ हो सकता है सिवा अपने आपके।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट का सिर झुक गया। उसे अपनी अनाथता का अहसास हुआ और अनाथी मुनि की सनाथता का। सम्राट ने इतना ही कहा, 'भगवन, आपका जीवन-बोध धन्य है। सच तो यह है कि आप अनाथ नहीं, सनाथ हैं। अपने-आपके आप सम्राट हैं।'

आखिर हम सब अकेले हैं। अकेले के अलावा तो सब झमेले हैं। एकाकीपन के बोध से जीवन में सच्चे संन्यास का कमल खिलता है, सम्यक् ज्ञान की ज्योति उजागर होती है।

महावीर ने संन्यासी को मुनि की संज्ञा दी है। मुनि वह जिसके मन में मौन घटित हुआ। मुनि वह जो मौन की अलख से अभिभूत हुआ। मौन घटित होगा कैसे? सीधा-सा ज़वाब है स्वयं के एकाकीपन के बोध से। यह बोध जितना गहरा होगा, मौन उतना ही विराट होता जाएगा। तन-मन मौन होगा, चेतना में जागरण का गीत फूटेगा। संबोधि का सौरभ उठेगा। मौन में ही समाधि है। मौन में ही ब्रह्मानंद और परमानंद की अनुभूति है। मौन में ही शुक्लध्यान का आकाश उतरता है और मौन में ही कैवल्य से साक्षात्कार होता है। एकाकीपन का बोध और चित्त में मौन, साधना की यही आत्मा है।

एकाकीपन के बोध से मौन घटित होगा अथवा इसे यों कहें कि मौन में उतरने से अपने स्वत्व का, एकाकीपन का बोध गहरा होगा। चित्त के शांत और स्वच्छ हुए बग़ैर स्वयं की मूल सत्ता तक पहुँच नहीं हो सकती। जो उथल-पुथल नज़र आती है, वह सागर के ऊपर उठने वाली लहरों की उठापटक है। हवाओं के निमित्त प्रभावी होते हैं। तूफ़ान सागर को पूरा आंदोलित प्रभावित कर डालता है। किन्तु मज़े की बात यह है कि यह जो कुछ घटित होता है वह सब परिधि पर है। सागर अपने अंतस्तल में शांत ही रहता है। जो हमारा मूल शांत केंद्र है, वह कभी अशांत नहीं होता। उसे कोई भी प्रभावित नहीं कर सकता। स्वयं के एकत्व में, स्वयं के निजत्व में, स्वयं की आत्म-सत्ता में शाश्वत सुखद मौन है, सनातन आनंद है।

अंतस् की सत्ता तो वह आकाश है, जिसमें रात-दिन आते हैं, ऋतुएँ बदलती हैं, मेघ-घटाएँ घिर आती हैं, बादल बरसते हैं, पौ फटती है, साँझ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होती है, मगर जो आकाश है वह इन सबसे अस्पर्शित और निस्पृह बना रहता है। बिजलियों के गरजने से उसका मौन नहीं टूटता, अमावस के घिर आने से वह अंधकारमय नहीं होता। सूरज के डूब जाने का यह अर्थ नहीं हुआ कि आकाश अस्त हो गया है। जिनके पास आँख है, उनके लिए रात के अंधियारे में भी सूरज की रोशनी है। जिनके पास आँख नहीं होती, समझ नहीं होती, वे ही कहते हैं कोई जन्मा, कोई मरा, कोई उगा, कोई अस्त हुआ।

आकाश तो जहाँ है, वहीं है। सूरज की रोशनी जहाँ है, वहीं है। तुम ही घूमते हो, तुम्हारी ही पृथ्वी परिक्रमा लगा रही है। पृथ्वी पीठ कर लेती है तो आसमान में रात हो आती है। पृथ्वी सामने हो आती है तो आसमान उजाले से भरा दिखाई देने लग जाता है। स्वयं की सत्ता तो आकाश की तरह है। वह सदा शून्य और मौन है, शांत और निस्पृह है। जितनी देर पृथ्वी और तुम, उसके सामने रहोगे, उतनी देर वह तुम्हें स्वच्छ और उज्ज्वल दिखायी देगा। पूरे चौबीस घण्टे ही पीठ कर लो तो दिन होगा ही नहीं, रात-ही-रात होगी।

स्व-सत्ता सदा मौन है, स्व-सत्ता का केन्द्र ही शांत केन्द्र है। मौन से मौन में प्रवेश होता है। मन के मौन से स्व-सत्ता के शांत मौन की ओर कदम बढ़ता है और उस मौन तक पहुँचने के लिए अस्तित्वमय होना होगा। जीवन की मूल ऊर्जा, जीवन के मूल तत्त्व तक पहुँचना होगा, अपने आप में आना होगा, अतंर्दृष्टि को अपने में लाना होगा।

हम स्वयं में रहें, सदा मुस्कराते रहें। करणीय सब कुछ करें, पर उनसे अकर्त्ता और निस्पृह बने रहें। सबके साथ रहें, सबसे प्रेम करें, पर स्वयं के एकत्व-बोध को बनाये रखें। अध्यात्म मनुष्य को सुख से जीने की कला देता है। अध्यात्म के पास वह गुर है, वह कुंजी है, जिससे आदमी संसार में समाधि के फूल खिलाता है। अपनी केवलता का, एकाकीपन का बोध ही कैवल्य को अस्तित्वगत जीवन में जीना है। जीवन को सदा मुस्कराते हुये जीयें, मुस्कान ऐसी हो कि एक बार मुरझाया हुआ फूल भी खिल उठे, टूटा हुआ चाँद भी हँस पड़े, डूबा हुआ सूरज भी उग आये।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान : व्यक्ति से विश्व की ओर

यदि आपको अपने आप से पहचान करनी हो, स्वयं की उच्च मानसिक क्षमताओं का विकास करना हो और जीवन को अधिक आनंदित और ऊर्जस्वित बनाना हो, तो आइये हम स्वयं को एक ऐसी राह पर ले चलते हैं, जिसे ध्यानयोग कहा जाता है। जिन्हें लगता है कि उनकी स्मरण-शक्ति कमजोर है, बुद्धि मंद है, पढ़ने में या काम करने में मन नहीं लगता, उनसे अनुरोध है कि वे ध्यान लगाएँ। जीवन में स्वतः त्वरा और प्रखरता आएगी। जैसे पेंसिल को घिसने से वह नुकीली हो जाती है, ऐसे ही मानसिक एकाग्रता से गुजरकर हमारी ज्ञान और आत्मिक ऊर्जा भी एकरस, एकलय, एक लक्ष्योन्मुख हो जाती है। बिखरे हुए पानी को जमीन सोख लेती है, पर एकत्रित हुआ पानी बहती नदिया का रूप लेकर विद्युत-शक्ति को जन्म दे देता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन का बिखराव विकास में बाधा है, मन का समीकरण विकास का आधार है। मनुष्य का सामान्य मन तो क्रियाशील रहता ही है, किन्तु असाधारण मन का स्वामी हुए बग़ैर मनुष्य असाधारण पुरुष नहीं हो सकता। हम अपने साधारण विचारों का त्याग करें, स्वयं के सोये आत्म-विश्वास को जगाएँ, असाधारण विचारों के स्वामी बनें। प्रत्येक मनुष्य अपने आप में प्रकृति की विशिष्ट रचना और सौगात है। जीवन में गौरव करने के लिए बहुत कुछ है।

ध्यान का अर्थ जीवन-विमुख या कार्य-विमुख होना नहीं है। ध्यान तो हमें जीवन के प्रति और अधिक सजग और आनंदित रहने की कला देता है। आम आदमी जीवन के प्रति लापरवाह है। ध्यान मनुष्य को जीवन का सम्मान देता है। ध्यान जहाँ एक ओर हमें स्थितप्रज्ञ बनाता है वहीं हमारी जीवन-शक्ति को वह स्वरूप देना चाहता है जिससे किसी का स्वार्थ नहीं वरन् सारे संसार का नौनिहाल हो, व्यक्ति विश्व के लिए उपयोगी और वरदान साबित हो।

माना, व्यक्ति विश्व के आगे कुछ नहीं है। विश्व के समक्ष व्यक्ति माटी का कण भर है। किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि अणु-बम कण का ही विस्तार और विस्फोट है। व्यक्ति के आगोश में विश्व नहीं आ सकता है, किन्तु व्यक्ति-व्यक्ति के द्वारा विश्व का नवनिर्माण और कायाकल्प अवश्य हो सकता है।

हम कौन हैं हमारे लिए यह मुद्दा बड़ा मायने रखता है, परन्तु हमारी चेतना कहाँ है यह उससे भी अधिक अहम सवाल है। हमारे लिए अपना और विश्व का कोई अर्थ है भी या हम किसी चलती-फिरती लाश भर हैं। हमें जीवन-सापेक्ष होना होगा। यह लोक, परलोक में उलझने की बजाय आत्म-सापेक्ष चिंतन-दृष्टि अपनानी होगी। जिसके लिए जीवन का अर्थ होगा, वही विश्व को अपनी ओर से सार्थकता का सौंदर्य प्रदान कर सकेगा। मनुष्य सृष्टि का अमृत है। जब अमृत से 'अ' की अंत्येष्टि हो गई तो हमारे पास जीवन का सम्मान एवं गौरव कहाँ बचा? सभ्यता और संस्कृति के मूल्य कहाँ बचे हैं! अब बचा है केवल स्वार्थ, बग़ैर आत्मा के लाश का लाश से खेले जाने वाला खेल। भला जब हम अपनी चेतना के प्रति सजग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न होंगे, अपनी चेतना को सृजन-पथ नहीं देंगे, अपनी चेतना को हार्दिक प्रेम की अस्मिता, मानसिक शांति की गरिमा, जीवंत करुणा की आर्द्रता और आत्मिक आनंद की उत्कर्षता नहीं दे पाते हैं, तो उस जीवन को हम लाश न कहें तो और क्या कहें? मनुष्य का निकम्मापन उसका मुर्दापन है। उसकी सक्रियता उसका कर्मयोग है। मनुष्य जीवंत हो, मुर्दा नहीं। वह कर्मयोगी हो, निष्क्रिय नहीं।

ध्यान हमें जितना अपने आपसे जोड़ता है, उतना जगत से भी। ध्यान जगत से पलायन नहीं है, वरन् स्थितप्रज्ञ होकर जगत को और अधिक प्रेम और आनंद के साथ जीने का अनुष्ठान है। वह हमें निस्पृह बनाता है। एक ऐसा निस्पृह जो दो-चार के राग से ऊपर उठा कर व्यक्ति को सारे संसार का बना देता है। वह ध्यान व्यक्ति को सदाबहार सुखी बनाता है, किन्तु उस सुख को अकेले भोगने की बजाय सबमें बाँटने में सुख की सही संतुष्टि और आनंदानुभूति प्रदान करता है। ध्यान तो हमें वह चिर मुस्कान देता है, जो जीवन-जगत की हर धूप-छाँप के बावजूद मंदिर के किसी अखण्ड दीप की तरह प्रज्वलित रहता है।

लोग समझते हैं कि ध्यान के लिए संसार को छोड़ना पड़ता है। ध्यान के लिए एकांत और गुफावास को ग्रहण करना पड़ता है। अगर ऐसा ही है तो ध्यान समाज के लिए हितकारी नहीं, वरन् समाज से पलायन है। जबकि ध्यान का विज्ञान तो हमें यह बताता है कि बग़ैर ध्यान के न तो समाज का, समाज के किसी भी घटक का समुचित विकास होता है और न ही व्यक्ति की आंतरिक ऊर्जा समाज को उसका वास्तविक सौंदर्य, उसकी वास्तविक सौम्यता और सुधार दे पाती है। ध्यान व्यक्ति को मृत नहीं बनाता है। वह जैसा है, उसे और अधिक जीवंत, सकारात्मक बनाता है। ध्यान-का-जगत चेतना-का-जगत है। बग़ैर ध्यान का संसार केवल शोर-शराबा है।

ध्यान से जुड़कर हम अस्तित्व से जुड़ रहे हैं। सारे भेद अस्तित्व के बाहर हैं। अस्तित्व की समग्रता में न आप भिन्न हैं और न ही कोई और। पानी की बूँदें कितनी भी अलग-अलग क्यों न दिखती हों, पर अस्तित्व

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की समग्रता के दौरे में हर बूँद सागरमय है। अस्तित्व समग्र है। ध्यान से जुड़कर हम समस्त अस्तित्व से जुड़ रहे हैं, समग्र अस्तित्व के प्रति संवेदनशील और करुणाशील हो रहे हैं।

विश्व की दूरियाँ आज बहुत सिमटी हैं, किन्तु मनुष्य की आपसी दूरियाँ इतनी बढ़ गयी हैं कि बड़े शहरों में तो पड़ोसी से भी छठे-छमास ही भेंट हो पाती है। व्यक्ति का अपने पड़ोसी के प्रति भी विश्वास नहीं रहा। फिर विश्व-बंधुत्व के प्रति वह कैसे आस्थाशील हो पाएगा। हर आदमी दूसरे आदमी को शक-शुबह की दृष्टि से देखता है। ऐसी स्थिति में इंसानियत के मूल्य कैसे बच सकते हैं। ध्यान हमारे आत्म-विश्वास को जगाता है, समग्र अस्तित्व से जोड़ता है, प्राणिमात्र के प्रति संवेदनशील और मानवीय बनाता है।

हम जगत के अंश हैं, हमें यह विश्वास होना चाहिये। परिवार समाज या जाति ही हम और हमारा नहीं हैं, वरन् सारा जगत हमारा है। जल, थल, नभ में कोई भी तो स्थान ऐसा नहीं है, कोई भी तो प्राणी ऐसा नहीं है जिससे अस्तित्व की दृष्टि से हमारा संबंध न हो। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सारी वसुधा हमारा परिवार है। मनुष्य ही क्यों, क्या चींटी-मकौड़ी भी हमारी करुणा के पात्र नहीं हैं? क्या फूल या पेड़-पौधे हमारे प्रेम की अपेक्षा नहीं रखते? आखिर, हम सभी तो एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। यह सृष्टि अन्योन्याश्रित सिद्धांत पर टिकी हुई है।

हम ध्यान में जीएँ और अपने हृदय में सारे जगत को ले आएँ। हृदय में प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और करुणा की हिलोर उठने दें। अपने मन की शांति और पवित्रता की बीन दसों दिशाओं के लिए बजने दें। हम जगत के हैं, सारा जगत हमारा है। प्राणिमात्र हमारा है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, पेड़-पौधे हमारे हैं। और तो और, सागर और सितारे भी हमारे हैं। हमारी ओर से सबका सम्मान है। हम यहाँ कोई अनजान अजनबी नहीं हैं। अस्तित्व की दृष्टि से हम सभी एक दूसरे से संबद्ध हैं, पूरे जगत से जुड़े हुए हैं।

हमारी ओर से एक चींटी अथवा एक तिनके का भी अपमान और उपेक्षा न हो। हम विश्वमैत्री के मंत्र को इतना आत्मसात् करते चले जायें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि घास का एक तिनका भी हमारे प्रेम और मैत्री-भाव के माधुर्य से वंचित न रहे। हमारी संवेदनशीलता इतनी हार्दिक, विस्तृत और अस्तित्वपूर्ण हो और यह कार्य संपन्न करेगा ध्यान। ध्यान यानी अस्तित्वमय होने की कला। ध्यान यानी शांति की सुवास। ध्यान यानी स्वयं को स्वयं का आशीष। ध्यान यानी जीवन का सम्मान और पुरस्कार। ध्यान धरो और संसार में जीयो।

ध्यान से संवेदनशीलता का विकास होता है और संसार के बीच जीने से संवेदनशीलता प्रतिफलित और परिणित होगी। हम हृदय में ध्यान धरें। स्वयं को और अधिक प्रेमपूर्ण करुणापूरित होने दें। हमारा जो पथ होगा, हमारा जो जीवन होगा, वह स्वयं के लिए, सबके लिए स्वत: समाधानमूलक होगा। हमारी ओजस्विता और तेजस्विता से, हमारे प्रेम और मुस्कान से, उच्च मानसिक एवं आत्मिक अवस्था से हर कोई प्रभावित और आकर्षित होगा। अस्तित्व पुष्पहार लिए कहेगा - स्वागत है तुम्हारा, कृतपुण्य हो तुम।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान के जीवन-सापेक्ष परिणाम

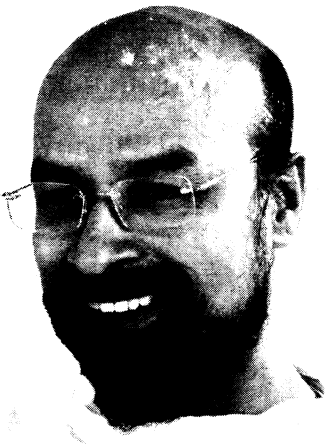

हृदय-केंद्र के जागरण से जीवन में प्रेम और करुणा के फूल खिलते हैं। स्वयं के एकत्व-बोध से चित्त में शांति और मौन घटित होता है। अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान होने पर जीवन में चिर मुस्कान और आनंद का आविर्भाव होता है। ध्यान एक ऐसा मार्ग है जो मनुष्य को इन चारों आयामों से गुजरने का अवसर देता है। मन की शांति के लिए हम हृदय-केन्द्र पर अवस्थित हों। प्रेम और करुणा से जीवन के सरोवर को लबालब करने के लिए हम समग्र अस्तित्व के साथ एकाकार हों। चिर आनंद के लिए स्वयं के सच्चे स्वरूप में अंतरलीन हों।

मनुष्य के पास प्रेम का जो फूल खिला हुआ है, उसका धरातल स्वार्थ और वासना से घिरा हुआ है। मन से उठी हुई प्रेम की हिलोर अंततः वासना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के गर्त में खो जाती है। हमारा प्रेम मानसिक नहीं, हार्दिक होना चाहिए। हृदय से जन्मा प्रेम मनुष्य को न केवल आनंद की विरल अनुभूति देता है वरन् उसे अस्तित्वमय बना देता है। प्रेम से बढ़कर जीवन का और कौन-सा सेतु होगा! माना प्रेम में पाप भी समाया है, किंतु प्रेम में जितना प्रकाश है उतना और किसी में कहाँ, प्रेम से बड़ा और कोई पुण्य नहीं। जीसस तो कहते हैं प्रेम ही भगवान है। कृष्ण प्रेम के अवतार रहे।

व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति, देह का देह के प्रति आकर्षण प्रेम की असलियत नहीं है। असली प्रेम तो वह है जो आदमी को गिराये नहीं, बल्कि उसे ऊँचा उठाये। प्रेम भले पति-पत्नी का ही क्यों न हो, किंतु प्रेम की असली अस्मिता और सम्यक् निष्पत्ति ही तब हो पाती है, जब दांपत्य का प्रेम हमें मैत्रेयी ओर गार्गी बना देता है। आज जिसे लोग प्रेम की संज्ञा देते हैं वह प्रेम कोई प्रेम थोड़े ही है, वह तो प्रेम का फूहड़पन है। हमने फूहड़पन को ही प्रेम कह डाला है। उस फूहड़पन ने तो प्रेम का ऐसा मटियामेट कर डाला है कि किसी सभ्य और सज्जन पुरुष को अपने मुँह से किसी के लिए प्रेम शब्द का उच्चारण करते हुए भी सोचना पड़ता है।

मनुष्य का जीवन अत्यन्त प्रेमपूर्ण, अत्यन्त हार्दिक होना चाहिये। प्रेम तो मनुष्य की पूजा है। प्रेम से बढ़कर प्रणाम क्या, प्रेम से बढ़कर आशीष क्या? प्रेम विनम्र हो जाता है तो उससे प्रणाम के अंकुर फूटते हैं। प्रेम मुस्कराने लगता है तो उससे वात्सल्य और आशीष की रसधार उमड़ने लगती है।

प्रेम को तुम जीवन का, जगत् का आधार समझो। प्रेम में समायी है भगवत् पूजा, प्रेम में समाये हैं सारे अवतार, सारे पैगंबर। भारत की 'सूफ़ी-परम्परा' प्रेम और ध्यान का अद्भुत मिश्रण है। माँ द्वारा बेटे का माथा चूमना, मित्र द्वारा मित्र को गले लगाना, परस्पर हाथ मिलाना और नमस्कार करना प्रेम के ही प्रगट रूप हैं। श्रद्धा में आदमी श्रद्धेय का चरण भी चूम लेता है। धन्यभाग अगर कोई श्रद्धेय तुम्हारा माथा चूम ले। आत्मीय आशीष का इससे बड़ा रूप और कोई नहीं होता। इस आशीष में प्रेम का जो प्राकट्य है, वह अनुपम है। चरण चूमना, माथा चूमना, भावों का अतिशय अतिरेक है। बाइबिल की कहानियाँ बताती हैं कि लोग जीसस के चरण चूमा करते थे और अपने आँसुओं से उनके चरण पखारते थे। सिर के बालों से उनके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरण पोंछा करते थे। कितना माधुर्य है मनुष्य के इस प्रेम में, इस प्रणाम में, इस पूजा में! हृदय से जन्मे प्रेम का ऐसा ही कोई प्रगट रूप होता है।

जीवन में प्रेम हार्दिक हो, हृदय से जन्मा हो, ध्यान से जन्मा हो। ध्यान की गहराई से जन्मा प्रेम जीवन की सुवास है, जीवन का नवनीत है। सच तो चह है कि व्यक्ति जितना ध्यान में डूबता जाता है, वह अपने को उतना ही प्रेमपूर्ण पाता है। उसके प्रेम में विकार की बू नहीं होती। वह प्रेम तो ध्यानस्थ होता है। यों हम हृदय में उतरेंगे तो सूना लगेगा। पर जब हृदय में बैंठेगे तो हृदय में एक ऐसी अन्तर्-हिलोर उठती पाएँगे जिसे हम ध्यान से जन्मा प्रेम कहेंगे। महावीर की अहिंसा और बुद्ध की करुणा में ऐसे ही प्रेम की रसधार बही है।

ध्यान से प्रेम जन्मता है; प्रेम ध्यान की ओर ले जाता है। प्रेम यदि चेतनामय और आत्ममय है, हृदय से संबंधित है, तो वह प्रेम हमें ध्यान की ओर ले जाएगा, जीवन-मैत्री और विश्व-मैत्री का सुख देगा। सम्यक् दिशा की ओर बढ़ा हुआ प्रेम ध्यान का ही महत्त्वपूर्ण पहलू है।

स्वार्थ और वासना से जुड़ा प्रेम, प्रेम नहीं वरन् प्रेम के नाम पर मन में विकृत नाले का प्रवाह है, मन से गंदे नाले का बहना है। ऐसा प्रेम तो मनुष्य को सुख की बज़ाय उत्तेजना देता है। शांति की बज़ाय कलह-क्लेश देता है। मिलन की बज़ाय खींचातानी का कारण बनता है। यह प्रेम तो तृष्णा और कामनाओं का मकड़जाल रचता है। आदमी उलटा मानसिक तनाव और शारीरिक थकान से घिर जाता है। यह प्रेम, प्रेम नहीं जीवन की समस्या है। यह मानवीय नहीं, मनुष्य में रहने वाली पशुता है, पाशविकता है।

प्रेम है वह, जो हमें शाश्वत की झलक दे। प्रेम है वह, जिसमें पर का निमित्त गौण, स्वयं की खिलावट और छलछलाहट ही मुख्य है। दूसरा गौण होता है, क्योंकि व्यक्ति स्वयं ही प्रेमपूर्ण हो जाता है। व्यक्ति स्वयं प्रेम हो जाता है। एक ऐसे हृदय का प्रेम या यों कहें कि एक ऐसे प्रेम का हृदय जिसमें भगवान का निवास है। हृदय जीवन का क्षीर-सागर है, जिसमें अंतर्यामी का बसेरा है। हृदय एक ऐसा मानसरोवर है, जिसमें प्रेम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के कमल खिलते हैं। एक ऐसी झील है, जिसमें प्रेम के हंस विहार करते हैं। ऊँचा उठता हुआ प्रेम हृदय की श्रद्धा है, भक्ति है, पूजा है, अर्घ्य है और लौटता हुआ प्रेम आनंद का उत्सव और अस्तित्व का आशीष है।

प्रेम का यह स्वभाव है कि वह किसी औढ़र दानी की तरह देकर ही सुख मानता है। किसी का करुणाशील होने के लिए प्रेमपूर्ण होना अनिवार्य है। प्रेम से ही करुणा का स्राव होता है। प्रेम और करुणा दोनों का संबंध हृदय से है। हार्दिक प्रेम और करुणा ही मनुष्य को जीवन का सम्राट बनाती है। करुणा में ही प्रेम फलित होता है। करुणा प्रेम का आध्यात्मिक रूप है, प्रेम का दिव्य रूप है। प्रेम मानवता का लक्षण है, करुणा आध्यात्मिकता का। प्रेम का जो पवित्र रूप है, प्रेम का जो दैवीय रूप है, प्रेम का जो आनंद-स्वरूप है, बुद्ध उसी को करुणा कहते हैं। बुद्ध करुणा के अवतार रहे हैं और महावीर अहिंसा के। अहिंसा का सकारात्मक रूप ही प्रेम और करुणा है। ध्यान की निष्पत्ति, ध्यान की कसौटी, ध्यान की सिद्धि करुणा की राहों से होकर गुजरती है।

कहते हैं: भगवान का एक शिष्य गुफा में नौ वर्षों से साधना में लीन था। वह अपनी साधना से संतुष्ट न हो पाया। जैसे परिणाम मिलने चाहिये, वापस घर लौट जाने की सोची। उसे लगा वह साधना करते थक चुका है। उसने वापस घर लौट जाने की सोची। पौ-फटते ही वह गुफा से बाहर निकल आया। तभी उसकी नज़र गुफ़ा के बाहर कोढ़ से घिरे किसी कुत्ते पर पड़ी। उसने सोचा, घर जाने से पहले कम-से-कम इस कुत्ते के तो घाव धो-पोंछ लिए जाएँ। यह सोचकर उसने अपनी चदरिया खोली और बड़े सरल हृदय से, समाधि-भाव से करुणापूरित होकर उस कुत्ते के घाव पोंछने लगा। घाव पोंछते-पोंछते उसका हृदय करुणा द्रवित हो छल-छला आया। उसकी आँखों से चार आँसू ढुलक पड़े और उसी के साथ फूट पड़ी अंतस् में निर्झरिणी बुद्धत्व की, खिल पड़ी कमलिनी अंतस् में सुवास की। घाव पोंछकर जब खड़ा हुआ तो उसकी साधना का प्रतिफल उसके साथ में था। वह प्रकाश से भरा था। ध्यान उसकी साधना का मार्ग बना और करुणा उसकी कसौटी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हृदय का प्रेम और हृदय की करुणा - जीवन-यात्रा के जहाँ ये दो मील के पत्थर हैं, वहीं चित्त की शांति और मन का मौन जीवन-पथ के सच्चे मित्र हैं। शांति घटित होगी मन के विसर्जन से। मौन घटित होगा चित्त के निर्मलीकरण से, स्वयं के एकत्व और त्रैकालिक सत्य के बोध से। मन में शांति चाहिये तो मन के अनुसार न चलें, मन के गुलाम न हों; स्वयं पर स्वयं का स्वामित्व हो। मन तो लुहार की वह भट्टी है, जिसमें दबे पड़े अंगारों को हवा दोगे तो चिंगारियाँ उठेंगी। मन के प्रति स्वयं ही मौन हो जाओ, तटस्थ, सजग और साक्षीभर हो जाओ, तो मन की अंगीठी स्वत: ही बुझ जायेगी। मन के बुझने पर जिस संपदा से साक्षात्कार होता है उसे ही हम बोध और संबोधि कहते हैं। मन के मौन होने पर जो रोशनी प्रगट होती है उसे हम मन की शांति कहते हैं।

मनुष्य ने शांति के जो निमित्त और माध्यम चुने हैं, वे कितने सफल हो पाते हैं, मनुष्य स्वयं उसका ज्ञाता और उपभोक्ता है। क्रोध को प्रगट करके, उत्तेजना को बाहर उलीच कर आदमी स्वयं को शांति के द्वार पर अनुभव करता है, किन्तु वह शांति कितनी क्षणिक होती है। पति को पत्नी से मिलने वाली अथवा पत्नी को पति से मिलने वाली उपभोगमूलक शांति और अशांति क्षण-क्षण बनती और मिटती रहती है। मन फिर भी शांत नहीं होता। थोड़ी-सी धौंकनी चली कि अँगीठी सुलग चली। थोड़ा-सा निमित्त मिला कि काम-क्रोध की चिंगारी दावानल का रूप ले बैठी। जीवन में शांति की तो वह रसधार हो, जिसे प्रतिकूलता तो दूर, अनुकूलता भी प्रभावित न कर सके। कोई गीत गा जाये तो उसकी मौज, और यदि कोई गाली दे जाये, तो उसकी मज़बूरी। अपना राम तो दोनों में ही रमता राम रहा। किसी की गाली इसलिए प्रभावी हो जाती है, क्योंकि हम गीत न बन पाये। कोई अंगारा हमें इसलिए सुलगा जाता है, क्योंकि हम सरोवर न हो पाये।

ध्यान हमें शांति का वह सरोवर प्रदान करता है, जिसमें मनुष्य स्वयं को सदा ही सद्य:स्नात पाता है। जब भी उसे देखो शांति के सरोवर में हर समय नहाया ही देखो। हृदय के ध्यान से जुड़कर हम जहाँ और अधिक प्रेमपूर्ण और करुणामय होते हैं, वहीं मन की उठापटक और तनाव से दूर, जीवन की सौम्य शांति के स्वामी होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आनंद ध्यान की परम निष्पत्ति है। आनंद के आकाश में तीनों का एक साथ संगम हो जाता है। प्रेम का भी, करुणा का भी और शांति का भी। आनंद केन्द्र में है। प्रेम, शांति और करुणा उस केन्द्र की परिधि है। मनुष्य का अंतर्हृदय प्रेम, शांति, करुणा और आनंद का धाम है। ध्यान व्यक्ति को उसके सच्चे स्वरूप का, निजता का बोध कराता है।

सच्चे स्वरूप के बोध से ही जीवन में सदाबहार आनंद घटित होता है। एक ऐसा आनंद घटित होता है जिसका न कोई निमित्त होता है न कारण - अनायास, अनवरत। यह आनंद तो सत् का आनंद है, चित् का आनंद है। योग इसे ही सच्चिदानंद कहता है।

जीवन में असली साधना तो वही है जिसकी परिणति सदाबहार आनंद के रूप में होती है। परिस्थितियाँ चाहे जैसी बनें, हम जब हर परिस्थिति में आनंदित हैं तो ध्यान आपको सध गया। आप स्थितप्रज्ञ हुए। आप बुद्धत्व के करीब पहुँचे। आप जीवन-सिद्ध और ध्यान-सिद्ध हुए। समयातीत सामायिक सिद्ध हुए।

मनुष्य हार्दिक हो, हृदय-सिद्ध हो, जीवन की हर डगर पर ध्यान उसका आधार हो। जीवन अधिक से अधिक प्रेमपूर्ण हो। करुणा की प्याली सदा छलछलाती रहे। मन में सदा शांति और चित्त में सदा मुस्कान हो। ओह! कितना सरल सूत्र है : मुस्कान ही मुक्ति है।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान का प्राण : साक्षी-भाव

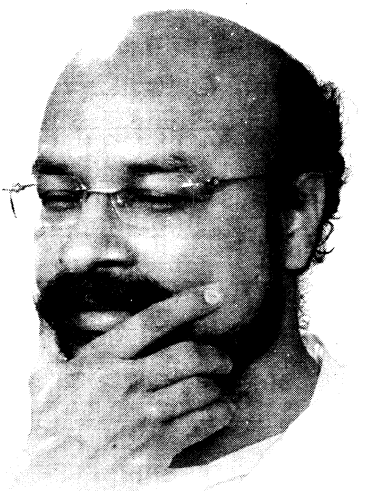

ध्यान हमारे समग्र जीवन के विकास का आधार है। ध्यान विधि नहीं, विकास है, जीवन की समग्रता का विकास, चेतना की समग्रता का विकास। विधि प्रवेश के लिए होती है। परिणति के लिए तो अंततः विधि से विमुक्त हो जाना पड़ता है। विधि तो मन और बुद्धि को लक्ष्योन्मुख बनाने के लिए है। विधि के द्वारा हम स्वयं में प्रवेश पा लें और जब लगे हमारा अंतर्गुहा में प्रवेश हो चुका है, तो अपने आपको विधि या विधि के चरणों से मुक्त कर लें। विधि तो ऐसे है जैसे बीज का माटी में उतरना।

बीज माटी में उतर गया फिर उसके साथ छेड़-छाड़ न करें। उसका केवल ध्यान रखें। बीज को स्वतः फूटने का अवसर दें। हमें केवल उस बीज के लिए सजग रहना होगा। वह सूख न जाए, इसलिए उसका सिंचन करना होगा। ध्यान का सतत स्मरण ही ध्यान की धारा को आगे बढ़ाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान का अर्थ है लगना, लयलीन होना। ध्यान सीधे-सादे अर्थ में अंतरलीनता है, अंतर-सजगता है। यह प्रवृत्ति में भी निवृत्ति का मार्ग है। कार्य में अकर्त्ता-भाव है। दृश्य और दृष्टा के बीच अलगाव का बोध बनाये रखने की कला है। हम अपने में जग जाएँ तो ध्यान तो हमारे लिए इतना सहज हो जाएगा कि फिर ध्यान करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। हमारी अंतर-दृष्टि में ध्यान की ही रोशनी होगी।

ध्यान कोई क्रिया नहीं है, यह तो क्रिया के द्वारा ही अक्रिया में प्रवेश की पहल है। ध्यान तो हमें सुखद मौन देता है। एक ऐसा अंतर-मौन, जो हमारी हथेली में जीवन-तत्त्व का बोध प्रदान करता है। यों स्वयं के अस्तित्व का पता लगाना आदमी के लिए आकाश में थेंगले लगाने के समान है। स्वयं की अंतरमौन-दशा में व्यक्ति को जिस तत्त्व का बोध होता है वही उसका मूल 'जीवन-तत्त्व' है, आत्मा और प्राण-तत्त्व है। मन के प्रवाह के चलते व्यक्ति को अपनी निजता का पता नहीं चल पाता, मन के विसर्जित हो जाने पर अंतर-जगत में जिस संपदा का अनुभव होता है, मूलतः वही हम हैं, हमारा चैतन्य और त्रैकालिक सत्य है।

ध्यान का असली गुर साधक का साक्षी-भाव है। साक्षी यानी दृष्टा की सजगता। साक्षी-भाव जीवन में दृष्टा-भाव का सर्वोदय है। कार्य और जगत के प्रति कर्त्ता-भाव की विलीनता। साक्षी यानी मौन। एक ऐसा मौन जिसे हम दीये की निष्कंप लौ कहेंगे। हवाएँ ज्योति को डगमगा देती हैं। जैसे हवा-रहित कक्ष में दीपक अकंप-अखण्ड जलता है, चित्त और चित्त-प्रवृत्ति के प्रति रहने वाली ऐसी सजगता जीवन-विज्ञान की भाषा में साक्षित्व कहलाती है। साक्षित्व यानी चॉयसलेस अवेयरनेस। एक ऐसी सजगता जिसमें 'यह' या 'वह' दोनों में किसी एक के चयन का कोई भाव नहीं होता। जैसे दीपक की लौ सबको देखती है, सबको प्रकाशित करती है, किंतु किसी को अपने में ग्रहण नहीं करती। वस्तु और व्यक्ति के प्रति रहने वाली यह वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह भावना साक्षित्व कहलाती है। साक्षित्व ही वास्तव में ध्यान की कुंजी है, ध्यान की नींव है, ध्यान का प्राण और ध्यान की आत्मा है। बग़ैर साधना का जीवन महज चलती-फिरती काया को ढोना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साक्षित्व के उदय के लिए हममें सतत यह सजगता चाहिये कि हमारे द्वारा क्रिया भर हो, किसी तरह की कोई प्रतिक्रिया नहीं। क्रिया बंधन नहीं होती। क्रिया जीवन के लिए अनिवार्य है, जीवन के संचालन और व्यवस्थापन के लिए अनिवार्य है। जैसे ही हम प्रतिक्रिया के धरातल पर पाँव रखते हैं कि मानो शांति के सरोवर में एक कंकरी गिरा दी। कंकरी कितनी भी छोटी क्यों न हो, तालाब को तो तरंगित कर ही देती है।

प्रतिक्रियाओं से बचने के लिए बेहतर होगा कि हम किसी पर किसी बात की टिप्पणी न करें। जो हो रहा है, उसके द्वारा ऐसा होना है इसलिए हो रहा है। किसी की 'होनी' में हस्तक्षेप करने वाले हम कौन होते हैं? अगर हम हस्तक्षेप करते हैं तो उससे तो उसकी बला टल जायेगी, लेकिन उससे उछलकर हम पर आ गिरेगी। हमें लाभ क्या होगा यह तो वक्त बताता है, किन्तु हानि अवश्य हो जाती है। मन में उठापटक और ऊहापोह जारी हो जाती है, चित्त हिंसा-प्रतिहिंसा, निंदा-प्रतिनिंदा, व्यामोह-विद्वेष, क्रोध और उत्तेजना के कण्टक पथ की ओर बढ़ जाता है। अनायास ही सही, मन एक नये वातावरण को घड़ लेता है। मन मकड़जाल को बुन लेता है।

एक लड़के ने दूसरे से कहा, 'अब अगर कुछ ज्यादा बोला तो तेरी बत्तीसी निकाल दूँगा।' दूसरे ने कहा, 'तू तो बत्तीस निकालेगा; मैं चौंसठ निकाल दूँगा। दोनों की इस गुत्थमगुत्थी की बात को सुनकर तीसरे ने बीच में ही टोका, जनाब, मुँह में दाँत ही बत्तीस होते हैं, तो चौंसठ कहाँ से तोड़ दोगे'? उसने कहा, 'मुझे पता था कि तू बीच में ज़रूर बोलेगा, बत्तीस इसके और बत्तीस तेरे।'

साक्षी की स्थिति तो यह होती है कि कहते हैं : राजर्षि भर्तृहरि किसी पहाड़ी पर चिंतन-मुद्रा में बैठे थे तभी उनकी दृष्टि पहाड़ की तलहटी पर किसी चमकते पत्थर पर पड़ी। उन्होंने ध्यान से देखा तो चौंके। क्योंकि वह पत्थर, पत्थर नहीं था। गोलकुंडा से निकला कोई आश्चर्यजनक हीरा था। राजर्षि के मन में उस हीरे को पा लेने का विचार कौंधा। ऐसा करने के लिए वे खड़े होते, तभी देखा पूर्व दिशा की ओर से किसी घुड़सवार सैनिक को उसी मार्ग की ओर आते हुए। वे चौंके यह देखकर कि पश्चिम दिशा की ओर से एक और घुड़सवार आ रहा था। वे माजरा कुछ समझ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाते, उससे पहले वे दोनों घुड़सवार वहाँ पहुँच गये जहाँ वह हीरा पड़ा था। दोनों में तलवारें खिंच गईं। दोनों हीरे को पाना चाहते थे। दोनों को ही हीरे के रहस्य का पता चल गया। यह वास्तव में कोहिनूर जैसा ही कोई बेशकीमती हीरा था। कोहिनूर के लिए दो तो क्या, सौ-सौ लाशें बिछाई जा सकती हैं, दोनों लहू-लुहान होकर वहीं गिर पड़े।

भर्तृहरि इस लीला को देखकर मुस्कुराये। कोहिनूर वहीं था। उसके लिए दो लाशें बिछी थीं। भर्तृहरि ने इस स्थिति से कुछ प्रेरणा ली। पलकें बंद कीं और ध्यान में डूब गये। साक्षी ही सुखी रहता है। यह सुख आज उन्होंने पा लिया था।

प्रतिक्रियाओं से बचने के लिए हम किसी की निंदा-स्तुति में रस न लें, टीका-टिप्पणी में रुचि न लें। हम तो जो हैं उसी में मस्त रहें। मन में मौन और चित्त में पूर्ण विश्राम - ध्यान और साक्षित्व की सिद्धि के लिए यही सिद्ध सूत्र है।

हम मन की हर क्रिया को गिरने दें। विकल्पों की उधेड़बुन तो दूर, सोचने की धारा को भी मौन हो जाने दें। मन में बस मौन हो, स्वयं में स्वयं का बोध हो। मन को हम परिपूर्ण विश्राम में ले जाएँ। हमारा अंतर-जगत निष्कंप हो जाये, निस्तरंग हो जाये, तो फिर न केवल हम स्वयं के स्वयं साक्षी होंगे, वरन् अपने द्वारा संपादित होने वाले हर कार्य और हर गतिविधि के प्रति भी साक्षी ही रहेंगे। हमसे हर कार्य होगा, लेकिन इसके बावजूद हमारी सजगता हमसे नहीं छूटेगी। हम सदा अपनी स्व-सत्ता में स्थित रहेंगे। यहाँ तक कि झाड़ू लगाते हुए भी, स्नान करते हुए भी, भोजन-पानी स्वीकार करते हुए भी।

प्रश्न है यह सजगता आएगी कैसे? सजगता की सिद्धि का सहज-सरल शुरुआती दौर क्या होगा? हम इसे समझें। श्वास के प्रति सजगता, साक्षित्व के उदय की बड़ी सशक्त कला है। श्वास के प्रति हम जितने सजग होते जाएँगे चित्त का स्पंदन उतना ही न्यूनतर होता जाएगा। इससे हमारी श्वास मधुर, संतुलित और लयबद्ध तो होगी ही, हमारी चित्त-वृत्तियों पर भी इससे अंकुश लगेगा। उनकी तीव्रता में मंदी आयेगी। श्वास की मन को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिलने वाली ऊर्जा ध्यान की ओर अभिमुख हो चलेगी।

हम ध्यान में बैठें और सर्वप्रथम अपने स्थूल शरीर को सजगतापूर्वक निहार लें। शरीर के प्रत्येक अंग को, उसकी हर भाव-भंगिमा और संवेदना को देखें, उसके प्रति सजग हों, जागरूक हों। अपनी सजगता को दूसरे चरण में हम अपने विचारों के प्रति लाएँ। हमारे भीतर जो भी चल रहा है, जैसा भी चल रहा है, उसके प्रति किसी भी प्रकार का कोई भी विरोध या दमन का भाव न हो। हम विचारों से अलग होकर विचारों को देखें। जैसे कोई व्यक्ति किनारे पर बैठकर सागर की लहरों को निहारता है, ऐसे ही हम विचारों से अलग होकर विचारों को देखें। देखने वाला तट पर बैठा है और विचार सागर में उठने वाली लहरों की तरह आ रहे हैं। ध्यान रखें, हम कहीं विचारों के सागर में खो न जाएँ। दृष्टा और दृश्य में पृथकता बरकरार रहे। धीरे-धीरे आप पाएँगे कि विचारों की उधेड़बुन विलीन होती जा रही है। अंतरमन में शांति घटित होती जा रही है और आप अपने को अस्तित्व के साथ एकाकार पा रहे हैं। ऐसी स्थिति में आप स्वयं को एक मौन अनुभव दशा में पाते हैं, आनंदपूर्ण अहोभाव दशा में। चित्त में विश्राम और अंतर्हृदय में निमग्नता - ध्यान का यही आधार-सूत्र बनता है।

जैसे-जैसे विचार और वृत्तियाँ विसर्जित और विलीन होने लगती हैं, चित्त पर छाया स्वप्न और कल्पना-दृश्यों का कोहरा छँटने लगता है। दृष्टा का, स्व-सत्ता का सूर्य उग आता है। दृश्य खो जाते हैं, दृष्टा ही दृश्य हो जाता है। ध्यान मनुष्य को उसके समग्र जीवन का, समग्र अस्तित्व का यह विकास और उपहार प्रदान करता है। अंतर-लीनता और अंतर-सजगता ही इस सारे वातावरण की पृष्ठभूमि है।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान के गहरे गुर

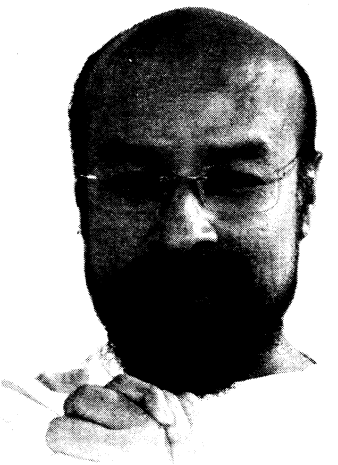

मनुष्य को यह ज्ञात नहीं है कि मूलतः वह कौन है, कहाँ से, किस दिशा-विदिशा से आया है। उसे यहाँ से कहाँ, किस ओर जाना है। उसे अपने मन में बीमारियों का अनुभव होता है। काम, क्रोध, मोह, वैर और विरोध - ये सब मन के ही रोग हैं। धर्म का विज्ञान मनुष्य को सदा यह प्रेरणा देता है कि वह अपने इन रोगों पर विजय प्राप्त करे। लोग इस हेतु से स्वाध्याय की ओर भी प्रेरित होते हैं और सत्संगों में भी शरीक होते हैं। पर क्या प्रवचनों को सुनने भर से या किताबों को बाँच लेने भर से मनुष्य अपने इन मूल रोगों से मुक्त हो जाएगा? ये वे रोग हैं जिनके आगे मनुष्य अपने आपको निरा बालक देखता है। एक बच्चे से अगर कहो कि तुम जिन रोगों से आक्रांत हो उनसे मुक्त क्यों नहीं हो जाते, तो बालक हम पर हँसेगा। उलटा हम पर ही प्रतिप्रश्न थोपेगा - क्या रोगों से मुक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होना मेरे हाथ में है?

मनुष्य का मन कितना विचित्र है, यह स्वयं मनुष्य ही नहीं जानता। मनुष्य का ज्ञान कितना सीमित है। वह अपने मन के बारे में कितना कम जानता है। अगर थोड़ा बहुत जानता भी है तो केवल अपने प्रगट और चेतन मन के बारे में ही जानता है। सच्चाई तो यह है कि मनुष्य का मन जितना प्रगट है, वह तो मन का दस-बीस फीसदी भाग ही है। शेष भाग तो अप्रगट ही बना रहता है। वह तो मौके-बेमौके निमित्त मिलने पर प्रगट होता है या रात को सो जाने पर स्वप्न-चित्र के रूप में प्रतिबिम्बत होता है। यह मनुष्य का अवचेतन मन है। अचेतन मन की स्थिति तो इससे भी और गहरी है। मन की जैसे-जैसे परतें उघड़ती हैं, मन के, अन्तरमन के रहस्य स्पष्ट होते हैं।

काम-क्रोध, वैर-विरोध की तरंगें हमारे चेतन मन में भले ही प्रगट होती हों, पर जब तक हम मन की मूल जड़ों तक नहीं पहुँचेंगे ऊपर से आरोपित किये गये नियम-व्रत, सुने गये प्रवचन, बाँचा गया ज्ञान पूरी तरह सार्थक नहीं हो पाएँगे। हमें मूल जड़ों तक पहुँचना होगा। तूल से मूल की ओर जाना होगा। प्रकृति का नियम है कि कड़वे फल की जड़ें कड़वी ही होती हैं। हम किसी बात के बिगड़ने पर न तो अपने क्रोध को दोष दें, न ही उसका प्रायश्चित्त करें। हम उन जड़ों तक पहुँचने की कोशिश करें जो निमित्त मिलते ही क्रोध, विरोध आदि के रूप में प्रगट हो आती हैं। हमें मूल तक पहुँचना होगा, मूल जड़ों को, मूल चूलों को हिलाना होगा, काटना होगा। कषाय के बीजों को काट कर ही व्यक्ति आध्यात्मिक आरोग्य को उपलब्ध होता है।

मन के रोग मिटें, मन की खटपट मिटे तो ही ज्ञात हो पाये कि मूलतः हम कौन हैं, कहाँ से आये हैं, कहाँ जाना है? बाहर का वातावरण कलुषित हो, तो स्वयं को उस वातावरण से अलग किया जा सकता है, पर भीतर का वातावरण कलुषित या अपवित्र हो तो बचकर कहाँ जाओगे? औरों से तो पलायन किया जा सकेगा, स्वयं से कैसे करोगे! भागो मत, भगोड़े मत बनो। तुम जहाँ हो अपने में वहीं स्थित हो जाओ। तुम्हारे पास ही तुम्हारे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रोगों की दवा है। योग्य माध्यम से, योग्य तरीके से स्वयं में उतर कर ही स्वयं के रोगों का उन्मूलन और उच्छेदन किया जा सकता है। अचेतन मन से भागने से काम नहीं बनेगा। वह तो हम जहाँ भी जाएँगे, छाया की तरह हमारे साथ लगा रहेगा।

इसलिए भगो मत! उससे बचने की कोशिश न करें। स्वयं के प्रति सहजता लायें, स्वयं में उतरें। स्वयं का स्वयं में उतरना ही मनुष्य की अन्तर्-यात्रा है, अंतर-निर्मलता का अनुष्ठान है। स्वयं में उतर कर स्वयं को समझना ही संबोधि-ध्यान है। हम युक्तिपूर्वक भीतर उतरें, सजगतापूर्वक भीतर उतरें। शरीर और मन को विश्राम की स्थिति में लायें। चित्त के प्रति सजग हों, अंतरमन में स्वयं को देखें और प्रभु की दिव्य शक्ति को अंतःकरण में पुकारें। पहले पहल सजगता और एकाग्रता सधेगी। तुम दृष्टा बनोगे। बाद में दृष्टा भी विलीन हो जाता है। केवल अस्तित्व ही शेष रहता है। तुम स्वच्छ दर्पण हुए, मनुष्य एक निर्मल आईना हुआ।

कहते हैं : भगवान् महावीर जंगल में साधना-लीन खड़े थे। किसी ग्वाले ने अपने बैलों की सुरक्षा के लिए महावीर को ध्यान रखने के लिए कहा। महावीर तो साधना में थे। उनके कानों ने ग्वाले की बात को ग्रहण ही नहीं किया। ग्वाला अपना काम निपटाकर जब गाँव से वापस लौटा तो पाया कि उसके बैल महावीर के पास नहीं थे। सोचा, इधर-उधर चरते होंगे। उसने काफी ढूँढ़ा, मगर जानवर नहीं मिले। थक-हार कर जब महावीर के पास लौटा, तो देखा कि उसके बैल साधना-लीन महावीर के पास खड़े थे। ग्वाले को लगा कि महावीर ने पहले उसके बैलों को छिपाकर रख दिया था, पर उसके भय से वापस ला खड़ा किया है। ग्वाले ने जब महावीर से अपने बैलों के बारे में पूछा, तब भी उन्होंने कोई ज़वाब नहीं दिया था, मानो उनके कान ही न हों; बहरे हों। ग्वाले ने सोचा अब तक तो इसने बहरे होने का ढोंग ही किया था, पर अब मैं इसे हकीकत में बहरा बना देता हूँ। अभी पता चल जायेगा यह साधना कर रहा है या साधना का ढोंग रच रहा है।

उसने दो पतली तीखी सलाई उठाई और लगा उन्हें महावीर के कानों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में ठोकने। जैसे लोग दीवारों में लोहे की कील ठोकते हैं, ऐसे ही उसने महावीर के कानों में लकड़ी की सलाई की कील ठोक दी। देवेंद्र यह देखकर व्यथित हो उठा। महावीर पर ऐसा अत्याचार! उसने महावीर के पास आकर कहा, 'भंते, ये जंगली लोग इस तरह तो आपको असीम कष्ट देते रहेंगे। मुझे आपकी सेवा में रहने का मौका दें, ताकि बाहरी विपदाओं का आपको सामना न करना पड़े।' महावीर ने कहा, 'इन्द्र, तुम्हें इन कानों में ठुकी हुई कीलें तो दिखाई दे रही हैं, लेकिन इन कीलों को ठुकने से मेरी अंतर-आत्मा में कितनी जाग पैदा हुई, मैं देह से कितना विदेह हुआ, यह तुम्हें दिखायी नहीं दे रहा। ग्वाला मेरे लिए उपकारी ही रहा। साधक के लिए तो उसे मिलने वाला हर कष्ट उसकी साधना और सहिष्णुता की कसौटी ही है।

जिसे साधना का, ध्यान का गुर समझ में आ गया, उसकी मूल बात हाथ में लग गयी, तो वह अपनी देह और मन से वैसे ही अलग रहता है जैसे सर्प अपनी केंचुली से, लौ माटी के दीये से।

जो होता है, हम उस होनी में आनंद लें। बग़ैर किसी हस्तक्षेप के, शांत सजगता से, देखें भर। साधक के पास तो बस स्वयं का अहसास रहे। भीतर कौन है, अंत:करण में क्या है? मैं हूँ? नहीं! केवल शांत, मौन, शुद्ध आकाश है, अस्तित्व है।

आप ध्यान में जीयें, ध्यान को जीयें, ध्यान से जीयें जीवन की आंतरिक चिकित्सा के लिए, अस्तित्व की समग्रता से संबद्ध होने के लिए। ध्यान अनुपम है, अद्वितीय है। ध्यान कीजिएं, पर हाँ, कुछ बातें अवश्य ध्यान में रखें।

पहली बात है: चिर प्रसन्न रहें। सदा मस्त रहें। ध्यान को जीने का अर्थ यह नहीं है कि स्वयं को पत्थर की प्रतिमा बना बैठो। ध्यान तो तुम्हें ऐसी प्रतिमा बनाता है जिसमें आनंद की शाश्वत सदाबहार लौ सुलगती है। तुम हर हाल मस्त रहो, जीवन की साधना के लिए इससे बढ़कर और कोई सूत्र, सिद्धांत या मंत्र नहीं है। चिर प्रसन्नता और चिर आनंद वास्तव में नित्य गंगा-स्नान की तरह है। सदा आनंदित रहना जीवन के तीर्थ का सदा हरा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भरा रहना है।

किसी ने पूछा, 'क्या, तुम एक साथ अड़सठ तीर्थों का नाम बता सकते हो?' मैंने कहा, 'क्या तुम्हें अब तक किसी ने बताया है? उसने कहा, अभी तो किसी ने नहीं। मैंने कहा, तो सुनो, मैं तो तुम्हें अड़सठ तीर्थों के नाम बताता हूँ उसमें न एक कम होगा और न एक ज्यादा। सदा मस्त रहो - इस बात में ही दुनिया के सारे अड़सठ तीर्थ समाये हुए हैं। आनंद ही अड़सठ तीर्थ है। सदा प्रसन्न रहना ही ध्यानमूलक जीवन की अभिव्यक्ति है। हम सदा मुस्कराते रहें। चाहे मान हो या अपमान, कोई गाली दे या गीत गाये, कभी नुकसान हो जाये या फ़ायदा, हमारी मुस्कान नहीं टूटनी चाहिये। हर परिस्थिति में, हर निमित्त में हमारे चित्त की प्रसन्नता बरकरार रहे। मस्ती ही वास्तव में मुक्ति है। कबीर ने गाया है-

मन लागो मेरो यार फकीरी में॥
जो सुख पायो राम भजन में, सो सुख नहीं अमीरी में।
भलो बुरो सबकी सुन लीजे, कर गुजरान गरीबी में॥
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भली बनी आई सबूरि में।
हाथ में लोटा, बगल में सोटा, चारों दिसि जागिरी में॥
आखिर यह तन खाक मिलेगा, कहाँ फिरत मगरूरी में।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिले सबूरि में॥

यह फ़क़ीरी क्या है? मस्ती। हर हाल में मस्ती। जन्म-मरण, दोनों में मस्त। मिलन हो या वियोग, दोनों में मस्ती।

मस्ती यान फ़क़ीरी, फ़क़ीरी यानी मस्ती। हृदय की मस्ती में जो अमीरी है वह दौलत की अमीरी में नहीं है। पद कहता है 'साहब मिले सबूरी में, इसलिए दूसरी बात यह ध्यान में रखें कि सब्र चाहिये, धीरज चाहिये। अनंत के मार्ग की ओर कदम उठाया है तो धैर्य भी अनंत चाहिये। ज़ल्दबाजी यहाँ काम न देगी। धीरज ही सुखद परिणाम देता है। पत्थर हो तो उसे ज़ल्दी में घिसा भी जाता है, पर बीज में से फूल तो धीरज से ही खिल पाएगा। बीज बोना हमारा काम है, उसे सींचना हमारा काम है, उसमें से कलियाँ और फूल खिलाना प्रकृति का दायित्व है। धीरज न धरा, तो बात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बनती भी बिगड़ जाएगी। धीरज धर लिया, तो बिगड़ती बात भी सुधर जाएगी।

बहुधा मैंने पाया है कि धीरज न होने के कारण ही हम काफी कुछ पाकर भी उसे खो बैठते हैं। तब दोष हम चाहे जिसके मत्थे मढ़ दें, पर हक़ीक़त यह है कि हमारा अधैर्य ही हमारी निष्फलता का दोषी बनता है।

कुछ दिन पहले की बात है : एक साधिका के मन में यह तीव्र उत्कण्ठा और अभीप्सा रही कि उसे मुक्ति मिले। वर्ष भर के दौरान वह जब भी मुझसे मिलती, वह अपनी अभीप्सा और बेचैनी मेरे सामने रखती। मेरा सुझाव रहता कि मुक्ति के लिए धैर्य चाहिये। हम बीज के सिंचन पर ध्यान नहीं देते। केवल फूल-फूल कहने और पुकारने से क्या होगा? हमें शक्ति, श्रम और सिंचन तीनों का समावेश करना होगा। हमें अचेतन मन तक उतरना होगा। उसे भी प्रगट और विसर्जित करने का अवसर देना होगा। मैं तो इतना-सा ही कहूँगा कि अनंत के मार्ग की ओर कदम उठाये हैं तो हममें धैर्य भी अनंत चाहिये। धीरज धरो, जीवन में ध्यान के विकास के लिए यह विकास का चौथा सूत्र है। बीज से क्या फूटा, भले ही वह आपका इच्छित या अभीप्सित न हो, पर उसकी उपेक्षा न करें। वह भी उपयोगी ही है। बीज से हमें फूल चाहिये, फल चाहिये, पर ध्यान रखें बीज में केवल फूल ही नहीं है। बीज में पत्ते भी हैं, कांटे भी हैं, डालियाँ और तना भी है। भीतर जो होगा, फूटेगा, निकलेगा। घाव फूटेगा, तो मवाद भी निकलेगा। मवाद के निकल जाने के बाद जो उजागर होगा, उसका नाम स्वास्थ्य है। उसका नाम चैतन्य-उपलब्धि है। हम अपने विश्वास, भावना और अभ्यास को डिगने न दें, यह इस चौथे सूत्र का सार है, और अन्तिम सुझाव यह है कि जहाँ तक हो सके मादक पदार्थों के सेवन से परहेज रखें, उत्तेजक परिस्थितियों से स्वयं को बचा कर रखें। परिस्थिति चाहे जैसी सामने आ जाये, हम अपने आपको संतुलित रखें। न कोई शिकायत, न कोई टिप्पणी, अपना राम तो सदा मस्त और आनंदित रहे।

पुख़्ता तबओं पर हवादिस का नहीं होता असर,
कोहसारों पर निशाने, नक्शे पा मिलता नहीं।

जिनके हृदय में मक्कमता आ गई, उन पर हवादिसों का, बुरी घटनाओं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का असर नहीं पड़ता। मिट्टी पर कोई पाँव रखे तो उसके पैरों के निशान अंकित हो जाएंगे। पर कोहसारों पर, पहाड़ पर, पत्थर पर पाँव रखो, तो पाँवों के कोई निशान नहीं बनते। हम तो ऐसे हों, कि कोई भी परिस्थिति हमें प्रभावित और आन्दोलित न कर सके। एक बात तय है कि हम अगर रोशनी बने रहेंगे, तो अंधकार कितना ही हम पर लौट-लौटकर आये, आखिर साम्राज्य तो प्रकाश का ही रहेगा, प्रसन्नता और पवित्रता का ही होगा, शान्ति और आनन्द का ही रहेगा।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान के जीवंत चरण

ध्यान का मार्ग सुगम है, दुर्गम भी; अथवा यों कहिये कि दुर्गम है, सुगम भी। ध्यान का गुर हाथ लग जाये तो ध्यान न केवल सुगम है, वरन् जीवन का सबसे बेहतरीन आध्यात्मिक प्रयोग भी। जो केवल ध्यान को क्रिया-योग मानते हैं, ध्यान के प्रति विधि-सापेक्ष दृष्टिकोण ही रखते हैं वे ध्यानयोग की क्रियाएँ भर संपादित कर लेंगे, विधि भर हो जाएगी, वे आत्मा को ढूँढते रहेंगे लेकिन आत्मलीन नहीं हो पाएँगे। आत्मा अथवा भगवान को खोजना केवल दिमागी खरपच्ची है, किन्तु उसमें लीन होना हृदय का हृदयेश्वर से मिलन है।

जब तक आत्मा से मिलने की तृषा रही, तब तक आत्मा से मिलन न हो पाया। तृषा जैसे ही मौन हुई कि स्वतः आत्मलीन हो गया। अगर हमें भगवद्-दर्शन करने हों तो केवल उससे मिलने की भूख रखने भर से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्या होगा! मनुष्य का सबसे बड़ा और सबसे पहले मन्दिर तो वह स्वयं है। शरीर साक्षात् मन्दिर है। शरीर के साथ उसी भावना के साथ पेश आओ, जैसा आप किसी मन्दिर या तीर्थ के प्रति समर्पित होना चाहते हैं। हम स्वयं एक ऐसे मन्दिर हैं जिनके गर्भ में और कई मन्दिर समाए हैं। स्वस्थ और पवित्र शरीर का मालिक होना शरीर को मन्दिर बनाना है। सोच और चिन्तन को सत्योन्मुख, शिवोन्मुख, सुन्दरतर बनाना मन को मन्दिर बनाना है, मधुर और सौम्य वाणी का उपयोग करना वाणी को मन्दिर बनाना है। ध्यान हमारे तन को मन्दिर बनाता है, वचन को मन्दिर बनाता है, मन को मन्दिर बनाता है। तन का स्वस्थ रहना, वचन का मधुर होना, मन का सौम्य और पवित्र होना, जीवन को मन्दिर ही तो बनाना हुआ है।

तन पूरी तरह जीवन-भर स्वस्थ रहे, कठिन है। अधर हर हाल में मधुर रहें, दुष्कर है, मन सदा आत्मलीन, पवित्र और मन्दिर के दीपक की तरह अखंड रहे, कम मुमकिन है। जो शान्त मन हैं, मधुर वचन हैं, स्वस्थ तन के स्वामी हैं, सृष्टि और प्रकृति की उन पर मेहरबानी है। तन का धर्म वृद्धत्व और रुग्णता है। मन का धर्म चंचलता और तमस् की ओर बहना है। जीवन की सफलता के लिए आत्म-पौरुष चाहिये, आत्म-विश्वास चाहिये। मन की चंचलता और कायरता न केवल हमारी सफलताओं को बाधित करती हैं, वरन् इनके चलते हमें असफलताओं का ख़ामियाज़ा भी भुगतना पड़ता है।

ध्यान का अर्थ है स्थिरता, लीनता, सजगता। हम असत् और गलत के प्रति रहने वाले अपने ध्यान को हटायें और सत्य तथा अमृत के प्रति ध्यान को ऊर्ध्वमुखी बनाएँ। आखिर यह तय है कि पत्नी की याद में रमने वाला मन परमेश्वर की याद में रसलीन नहीं हो सकता। आदमी जीवन में पाना तो चाहता है राम, लेकिन जिसमें उलझा है वह है काम। काम-रस और राम-रस दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं। हमारे धर्मग्रन्थों में इसीलिए निर्लिप्तता की बात कही गयी है। तुम काम का उपयोग करके भी उससे अलिप्त हो सकते हो। सुकरात ने कहा था मनुष्य मन के विपरीत उद्वेगों को शान्त करने के लिए जीवन में एक बार काम का उपयोग करे। इतने पर भी मन काम की ओर मचलता लगे तो वर्ष में एक बार सेवन कर ले। अगर किसी का तन-मन माया और तमस् से बेहद ही घिरा हुआ हो, तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसके लिए माह में एक बार की अनुमति है। जिसका इस पर भी नियंत्रण नहीं है, उसके लिए कोई सन्देश या सिद्धान्त नहीं है। सत्य के सन्देश आखिर मनुष्य के लिए होते हैं, जानवरों के लिए नहीं।

मन पूरी तरह निर्विकल्प रहे, यह सच में कठिन लगता है। मन संकल्प-विकल्पों से घिर ही जाता है। कितनी भी सजगता क्यों न रखें, विकल्प की कभी-न-कभी, कोई-न-कोई तो बयार चल ही पड़ती है। मन का धर्म सोचना है। मैंने पाया है कि जब हम ध्यान में होते हैं, ध्यान की गहराई में होते हैं, तो पूर्ण निर्विकल्प अवस्था रहती है, किन्तु शेष जीवन में हमारी समाधि सविकल्प ही हो सकती है। चित्त की पूर्ण निर्विकल्पता के लिए सतत एकत्व का बोध चाहिये। अन्यत्व के प्रति किंचित् भी हिलोर न उठे। देह और मन की पर्यायों को अनित्य देखा जाये, संसार को अशरण रूप माना जाये। हम जिस वातावरण में, जिस युग में जी रहे हैं, जैसा अन्न-पानी हमें खाने-पाने को मिल रहा है वह कितना प्रदूषित है! तुम कितना भी अपने को बचाओ, लेकिन पानी के साथ शरीर में उतर रहे प्रदूषण को कैसे रोकोगे? हवा में फैले प्रदूषण का निरोध करना आखिर सम्भव नहीं है। हम शान्त मन के स्वामी बनें।

हमारे अधर मधुर हों, हमारा तन साफ-स्वस्थ हो, यह अपेक्षित है और सम्भव भी। हम शान्त मन के स्वामी हो सकते हैं। पूर्ण निर्विकल्प होना आम आदमी के लिए मुमकिन नहीं है। हम ध्यान में बैठें, ध्यान में गहरे उतरें और एक घंटा भी स्वयं की संकल्प-विकल्प रहित स्थिति रही तो समझ लें जीवन को शान्त-सौम्य बनाने का गुर हमारे हाथ लग गया। स्वयं की संकल्प-विकल्प रहित स्थिति का नाम ही ध्यान है और उस स्थिति की अनुभूति तथा परिणाम का नाम ही सम्बोधि है। इस स्थिति तक पहुँचाने का जो उपक्रम है, मैं उसी को सम्बोधि-ध्यान कहता हूँ। विधि चाहे जो हो, चाहे जिसकी हो, थोड़े-बहुत परिवर्तन को लिए सभी समतुल्य होती हैं, लेकिन हर ध्यान-विधि की जहाँ जाकर परिणति होती है वह हर परिणति सम्बोधि-ध्यान के नाम से पुकारी जा सकती है। संबाधि-ध्यान किसी विधि का नाम नहीं, वरन् चेतना की संबुद्ध, जागृत, उपलब्ध अवस्था का नाम है।

जीवन में ध्यान हो, यह हर किसी के लिए ज़रूरी है। ध्यान के साथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हम अपने मन की विकल्प-धारा, मन की भावना को कुछ रचनात्मक मोड़ दें, ताकि हम केवल हमारे जीवन को ही नहीं, वरन हमारे बोल-बर्ताव को भी, हमारे रहन-सहन और आचार-व्यवहार को भी सौम्य और मधुर बना सकें। जो ध्यान करके भी माया रखता है, प्रपंच से गुजरता है, अपने क्रोध पर काबू नहीं रखता, वह ध्यान से गुजर कर भी ध्यान से नहीं गुजर रहा। वह माया की तरह ही ध्यान का जंजाल पाल रहा है। तुम ध्यान धरो और वाणी में सौम्यता न आए, तुम्हारे व्यवहार में मधुरता न आए, तुम्हारे चित्त में सहिष्णुता न उतरे तो फिर ध्यान हुआ ही कहाँ? तुम ध्यान धरो पर अगर तुम अपने जीवन को कोई व्यवस्था न दे पाओ, कोई संयम और अनुशासन न दे पाओ तो हमारे लिए यह ध्यान से भी अधिक विचारणीय है। तुम ध्यान की धारा को बदलो, चिंतन की धारा को बदलो, अपने बोल-बर्ताव की धारा को बदलो। ध्यान के द्वारा हमारा ऐसा मनोपरिवर्तन हो। हम चेतना की उच्च ऊर्जा और शक्तियों के स्वामी हो सकें तो सौभाग्य! कम-से-कम मन के अन्धतमस् में ज्योतिर्मय दीप तो उतर जायें। सोच की धारा को, बोल-बर्ताव की धारा को नया रूप, नया आयाम, नई दिशा देने के लिए ही चार चरण हैं- पहला है मित्रता, दूसरा है प्रसन्नता, तीसरा है दयालुता तथा चौथा है मध्यस्थता। ये चार चरण धर्म-ध्यान के चरण हैं। ध्यान के लिए रसायन हैं ये। ध्यान को पौष्टिकता देते हैं ये।

पहला है : मित्रता। मित्रता के मायने हैं स्वयं को छल-प्रपंच से मुक्त करना; सारे संसार के प्रति, प्राणि-मात्र के प्रति, अखिल ब्रह्माण्ड के प्रति प्रेमपूर्ण हो जाना। यहाँ मित्रता के मायने व्यक्ति से व्यक्ति के बीच नहीं वरन व्यक्तिवादिता से हटकर सम्पूर्ण विश्व के साथ सरोकार हो जाना है। प्रेम हो ऐसा जैसा सन्त वैलेंटाइन का रहा। आज हम जिस वैलेंटाइन्स डे को मनाते हैं उसका रूप हमने संकीर्ण और विकृत कर डाला है। वैलेंटाइन्स डे का मतलब किसी प्रेमी-प्रेमिका के प्रति प्रेम प्रगट करना नहीं है वरन् सारी मानवता के प्रति, प्राणी-मात्र के प्रति स्वयं का मित्र हो जाना है। वैलेटाइन्स डे वास्तव में विश्व-मैत्री का, विश्व-प्रेम का दिवस है। तुम विश्व-मित्र हो जाओ, सारा विश्व तुम्हारा हो जायेगा। पृथ्वी भर को अपना परिवार बना लो, पूरी पृथ्वी तुम्हारी हो जायेगी। 'मेरा परिवार' के संकीर्ण दायरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से हम बाहर आयें और हर परिवार हमारा परिवार हो जाये, विश्व-मैत्री के चिंतन के पीछे यही पृष्ठभूमि है।

यह मित्रता एक ऐसी मैत्री है, जिसमें प्रेम भी है और करुणा भी; क्षमा भी है और सहिष्णुता भी। तुम ध्यान धरने से पहले अगर विश्व-मित्रता का चिन्तन करते हो, तो तुम मैत्री के माधुर्य से आह्लादित हो उठोगे, प्रेम के परिपाक से 'पूर्णता' का साक्षात् अनुभव करोगे। हमारा यह भावपूर्ण चिंतन हो - 'मैं सबको क्षमा करता हूँ और सब मुझे क्षमा करें। प्राणिमात्र के प्रति मेरा प्रेम है। मेरा किसी से किंचित भी वैर नहीं।' तुम सम्पूर्ण विश्व को अपने हृदय में आमंत्रित करो। सम्पूर्ण अस्तित्व स्वतः तुममें साकार होता दिखेगा। तुम भी सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ एकरूप हो जाओगे। हृदय में विश्व को न्यौता दो और फिर सम्पूर्ण विश्व पर अपना प्यार और माधुर्य उड़ेलो।

दूसरा है : प्रसन्नता। जिसके हृदय में सदा प्रेम, माधुर्य और पवित्रता की सुवास रहेगी, स्वाभाविक है वह प्रसन्न-हृदय, प्रसन्न-चित्त रहेगा। प्रसन्नता का अर्थ हम हँसना-हँसाना न समझें। हँसी-ठठा करना तो एक प्रकार की फूहड़ता है। हँसने और मुस्कुराने में फ़र्क़ है। हँसना फूहड़ता है, मुस्कुराना शालीनता। यहाँ प्रसन्नता का अर्थ हँसने-हँसाने से नहीं है, वरन् एक ऐसी मुस्कान से है जो किसी के द्वारा लाख उपेक्षित होने के बावजूद बरकरार रहे। स्वाभाविक है कि कोई तुम्हें अपमानित करे, कटु शब्द कहे, लेकिन हमारी ओर से इसके बावजूद उसके प्रति होने वाला सद्व्यवहार ही वास्तव में चित्त की शान्ति और प्रसन्नता है। जिस मुस्कान में शान्ति, समता और सहिष्णुता का पुट हो उसी का नाम प्रसन्नता है, प्रमोद-भाव है। जैसे काँटों के बीच गुलाब खिला हुआ रहता है, जैसे गढ्ढे में जल की तरंग लहराती है, जैसे पत्तों पर ओस के कण झिलमिलाते हैं, जैसे रात के अंधियारे में चाँद दमकता है, ऐसे ही हमारी चिर-प्रसन्नता रहे।

आपमें-से हर कोई किसी-न-किसी महापुरुष को अपना आदर्श मानता होगा। कहा जाता है कि महावीर के कान में कीलें तक ठोक दी गईं, मगर फिर भी उन्होंने कोई प्रतिकार नहीं किया। उनकी अंतरात्मा का माधुर्य खंडित नहीं हुआ। जीसस को सलीब पर चढ़ा दिया, मगर उस महान आदमी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की कितनी अनुपम, अनूठी करुणा / प्रमुदितता / मधुरता, कि मुँह से ये अलफ़ाज़ निकल रहे हैं ओह मेरे प्रभु! माफ कर इन्हें; ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।

हम जीवन के साधना के पथ पर आगे बढ़ रहे हैं। हमारे सामने न तो सलीब की स्थिति है और न ही कानों में कीलें ठुकने की नौबत। हम अगर यों बात-बेबात में चिड़चिड़ा उठेंगे, किसी वांछित-अवांछित शब्द को भी न सह पाएँगे तो यह मुमकिन ही नहीं है कि हम अपनी अन्तर-प्रसन्नता को मन्दिर के दीये की तरह अखंड रख पायें। दीये और फानूस अगर बुझ भी जाएँगे तो फिर से जलने के ढेर सारे साधन हैं। हमारी चेतना अगर बुझ गई तो बूझो कि चेतना के जागरण के लिए फिर से हमें कितना पुरुषार्थ करना होगा। चेतना का दीप एक बार जलाया जा सकता है, हम अपनी चिर प्रसन्नता से उस दीप को सींचें, न कि अपनी अहम् की नासमझी में उसे फूँक मार कर बुझा बैठें।

चेतना का दीप जले अखंड, चिर प्रसन्न। हम स्वयं भी ज्योतिर्मय हों और औरों को भी ज्योतिर्मयता का बोध प्रदान करें। जीवन वह चन्दन हो जो खुद भी सुवासित हो और जिसके शीष पर जाकर तिलक करे, वह भी सुवासित हो।

अन्तर-भावना का तीसरा पहलु है दयालुता। स्वाभाविक है कि प्रेम और मित्रता को जीने वाला सदा प्रसन्न होगा। दया और करुणा उसके जीवन की परछाई जैसे होंगी। दयालुता तो अन्तरहृदय की वह कोमलता है जैसे कि मक्खन हुआ करता है। तुम किसी रास्ते से गुजरो और वहाँ कोई दीन-हीन दशा में पड़ा देखकर तुम करुणा-द्रवित न हो उठो तो इसका अर्थ है तुम्हारा हृदय मृत है। तुम अमृत की खोज भले ही कर रहे हो, पर अमृत की खोज के लिए स्वयं को अमृत होना पड़ता है। मृत को मृत ही मिलता है, अमृत नहीं।

एक परम्परा की किताबों में मैंने पढ़ा कि बिल्ली अगर चूहे को मारने को दौड़े तो उसे छुड़ाओ मत। क्योंकि चूहा बिल्ली का भोजन है और चूहे को बचाकर बिल्ली के भोजन की अन्तराय लगाने के दोषी होते हो। ये किताबें कहती हैं कि तुम किसी को दान मत दो। क्योंकि क्या भरोसा कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह तुम्हारे दान के पैसे से रोटी खाएगा या शराब पीयेगा। अगर शराब पी तो उसके द्वारा लिए जाने वाले मद्यपान का पाप तुम्हारे मत्थे चढ़ेगा। इस तरह की बात कहने वाले भी दुनिया में धार्मिकता के प्रतिनिधि कहलाते हैं। आखिर तुम उसे धर्म कहोगे भी कैसे, जिसमें दीन के प्रति दया नहीं, रुग्ण के प्रति सेवा नहीं और करुण के प्रति करुणा नहीं। सवाल भोजन के अन्तराय का या मद्यपान के पाप का नहीं है। सवाल हमारी इन्सानियत का है, मानवता के अर्थ का है, हृदय की कोमलता का है। बुद्ध तो इतनी महान करुणा के स्वामी हुए कि उन्होंने कहा कि इतनी आर्त और पीड़ित मानवता को यों ही उसके भाग्य के भरोसे छोड़कर मेरी ओर से निर्वाण की कामना करना, अर्थहीन है। बुद्ध ने भले ही बुद्धत्व की ज्योति पा ली हो मगर इसके बावजूद वे मानवता को अपनी करुणा का भागीदार समझते हैं। कृष्ण की करुणा कि उन्होंने गौ-सेवा की, नेमी की दयालुता कि बारातियों के लिए किये जा रहे जीव-वध को रोकने के लिए राजुल की वरमाला की परवाह न की और अपने विवाह तक को तिलांजली दे दी। शिवि तो शरणागत कबूतर की रक्षा के लिए बाज को अपनी जाँघ का मांस भी देने को तैयार हो जाते हैं। करुणा तो चाहिये ही। दया तो हृदय का कोमल गुण है। भगवान करे हर आदमी कर्ण हो, ज़रूरत पड़े तो इस मानवता के लिए मृत्यु का भी वरण हो।

हमारे द्वार से कोई भी खाली हाथ न लौटे, भगवान कीड़ी को कण देता है और हाथी को मण। अपने द्वार पर आये हुए किसी याचक को दो मुट्ठी अनाज दे देना, प्यासे को पानी पिला देना, रुग्ण की सेवा कर देना, किसी अनाथ बच्चे को गोद ले लेना, बेकार भटक रहे बच्चे को गोद ले लेना, बेकार भटक रहे बच्चों के लिए शिक्षा और साक्षरता का इन्तज़ाम कर देना, मेरे प्रभु! परमेश्वर की ही प्रार्थना है।

कहा जाता है कि दुनिया का मालिक एक बार हर किसी के द्वार पर कभी-न-कभी अवश्य पहुँचता है। उसकी ओर से ईश्वर की इबादत स्वीकार करने के लिए, अर्घ्य अंगीकार करने के लिए, और इसमें हम तभी सफल हो पाएँगे जब हम ईश्वर की इन्तज़ारी नहीं वरन हर इन्सान में ईश्वर को देखेंगे, प्राणी-मात्र में परमात्मा को निहारेंगे। पता नहीं कब किस रूप में भगवान हमारे द्वार पर उपस्थित हो जाएँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौथा पहलू है : मध्यस्थता। यानी एक ऐसा मौन जिसमें आदमी औरों के द्वारा की जा रही उचित-अनुचित क्रियाओं के प्रति निरपेक्ष बना हुआ रहता है। मध्यस्थता संतुलन है। जीवन स्वयं एक उत्सव है, एक पर्व है, एक नृत्य है, पर एक ऐसा नृत्य जैसे कोई नर्तक रस्सी पर नृत्य कर रहा हो। जैसे ही हाथ से होश छूटा तुम गये गर्त में। स्वाभाविक है कि तुम जीवन जी रहे हो और जीवन भी ध्यान की आभा से ओत-प्रोत! हमें हर हाल में प्रतिक्रियाओं के प्रति निरपेक्ष, शांत और प्रसन्न होना होगा। दुनिया के पास जो होगा वह दुनिया देगी। तुम्हारे पास जो होगा वह तुम दोगे। दुनिया तुम्हें प्रणाम देगी तो अपमान भी। साधना की अस्मिता इसमें है कि हम अपमान के बदले आशीष लौटाएँ, बाधाओं के बदले प्यार की बयार लौटाएँ, काँटों के बदले भी करुणा के फूल खिलाएँ।

इंसान ही नहीं पंछी और जानवर भी, पेड़ और पौधे भी, पहाड़ और झरने भी तुम्हारे प्रेम के पात्र हो जाएँ। हम तो अस्तित्व के साथ ऐसे एकाकार हो जाएँ जैसे बूँद सागर में निमज्जित होती है। जैसे चातक स्वाति का हो जाता है, जैसे सागर चाँद की ओर उमड़ता है। हम तो एक ऐसा जाम पीएं कि ज़िंदगी फ़क़ीरी का आलम हो जाये, अन्तरमन सम्राटों का आनन्द हो जाए। चित्त को पूरी तरह रिक्त हो जाने दो। शून्य और शाश्वत, निरपेक्ष, पूरी तरह एम्प्टी-ब्लेंकनेस। संकल्प-विकल्प-रहित स्थिति, मान-अपमान में सम स्थिति। नफ़ा-नुकसान में समदृष्टि।

हम मुक्त हो चलें। तन-मन दर्पण हो जाएँ। हालात चाहे जैसे हों पर हमारी चेतना की स्वतंत्रता अखंड रहे। गलती करने वालों को उनकी गलतियों के लिए माफ़ कर दें। उपेक्षा करने वालों के प्रति भी उदारता का अमृत बरसता रहे। तुम ऐसे फूल हो जाओ कि चेतना का कमल खिला हो। दुनिया के दलदल में रहकर भी उससे अलिप्त होकर अपनी सुषमा बिखेरो। अपने आत्म-सौन्दर्य का स्वयं भी आकंठ पान करो और औरों की खुशियों के लिए भी निमित बनो। मन मयूर की तरह सदा नृत्यमय रहे। हृदय में कोई हिलोर उठे तो वह गीत का झरना बन जाये। जीवन ऐसा हो जैसे अंधेरी रात में प्राची की ओर चाँद उदित हो जाये, आँगन में चिराग़ जल उठे। ❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान का उदात्त रूप

सार का चिंतन करने से असार छूटता है। धर्म का मनन करने से संप्रदाय छूटता है। परमात्मा में तन्मय होने से प्रतिमा छूटती है। जब तक व्यक्ति केंद्र की ओर कदम नहीं बढ़ाता, परिधि मूल्यवान बनी हुई रहती है। परिधि असार है। भले ही परिधि भी केन्द्र का विस्तार हो, लेकिन जब हम अंतर्यात्रा करते हैं तो हम केन्द्र के इतने क़रीब पहुँच जाते हैं कि हमारे लिए परिधि फिर कोई बड़ा अर्थ नहीं रखती। जब तक आदमी के पास जीवन का मार्ग नहीं होता, तब तक शास्त्र मूल्यवान और मार्गदर्शक हैं। लेकिन जब हम रास्तों को पार कर लेते हैं तब शास्त्र का सत्य हमारा अपना सत्य हो जाता है। तब शास्त्र गौण हो जाते हैं। हम जो कहते हैं वही आने वाली पीढ़ी के लिए शास्त्र बन जाता है। प्रतिमा को देखकर परमात्मा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की स्मृति आती है। जब परमात्मा की स्मृति में एक लय हो जाते हैं तो पत्थर की प्रतिमा बिखर जाती है। वहाँ परमात्मा का रूप साकार हो जाता है।

ग्रंथ साधन है सार के बारे में सोचने के लिए। गुरु साध्य है साधन की ओर अंगुली-निर्देश करने के लिए। प्रतिमा साधन है या मूर्ति साधन है परमात्म-स्वरूप की ओर बढ़ने के लिए। साधन का तब तक मूल्य है जब तक साध्य उपलब्ध न हो जाए, साधन तो रास्ता है पहुँचने के लिए। साधन तो बैशाखी है चलने के लिए। साधन तो बिल्कुल ऐसे है जैसे बच्चे के लिए माँ की अँगुली का सहारा मिल जाये तो चलने में थोड़ी आसानी हो जाती है, संबल मिल जाता है। हमें सार का चिंतन करना चाहिये। असार को वैसे ही छोड़ देना चाहिए जैसे गूदे को पाने के लिए छिलका, धान को पाने के लिए भूसा। हमारे कदम सार की ओर, केन्द्र की ओर बढ़ें।

यह सारा जगत गुण-दोषमय है। कोई भी वस्तु या व्यक्ति ऐसा मिलना कठिन है जो गुण और दोष रहित हो। न तो कोई ऐसा है जिसमें सौ फीसदी दोष ही हों, कोई गुण न हो। ऐसा भी मिलना कठिन है जिसमें गुण ही गुण हों, किसी प्रकार का दोष नहीं हो। गुण और दोष हर वस्तु, हर व्यक्ति के साथ चलते हैं। व्यक्ति जहाँ जाता है उसके गुण-दोष उसके साथ-साथ रहते हैं। फ़र्क़ इतना-सा ही पड़ता है किसी में गुण ज्यादा होते हैं तो किसी में दोष ज्यादा होते हैं तथा गुण कम। मगर हैं सभी गुण-दोष मय ही। सार-तत्त्व का चिंतन-मनन करने का अर्थ यह हुआ कि हम गुणों की ओर केंन्द्रित हों। दोष पर ध्यान न दें। यदि हमें गुणों को ग्रहण करने की दृष्टि मिल गई, तो हम एक ऐसी शक्ति के स्वामी हुए जो दोषों से भरी हुई किसी चीज में गुण की तलाश कर लेंगे। हम गलत वस्तु और गलत आदमी का भी सही और सार्थक कार्य के लिए उपयोग कर सकेंगे। गुणों को ग्रहण करने की दृष्टि हमें सार और सार्थक के चिंतन से, जीवन और जगत् के प्रति सतत सजग और अनुरागी होने से प्राप्त होगी। सार को, सार्थक को, गुणों को देखने की दृष्टि ही ध्यान-दृष्टि है, योग-दृष्टि है। इसे हम सम्यक्दृष्टि और जीवन-दृष्टि कहेंगे।

वस्तु या व्यक्ति के प्रति हम गुणात्मक कैसे हो पाएँ इसके लिए हम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपनी दृष्टि को अंतरमुख करें और स्वयं के द्वारा स्वयं का ध्यान धरें। हम आत्म-निरीक्षण करें। हमें अपने भीतर जो अवांछित और अमानवीय लगे उसे दृढ़ संकल्प-शक्ति के साथ बाहर निकाल फैंकें। और स्वयं के जो मानवीय गुण हैं, जो सार और योग्य है उस को प्रगट करें। हम अपने अंत:करण में सम्यक् चिंतन के कुछ ऐसे चिराग उतारें जो वांछित को प्रगट होने में जोर अवांछित को बाहर निकालने में हमारी मदद करें। हम सार्थक बिन्दुओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। सार्थक विषयों पर अपने मन को एकाग्र करें। जैसे-जैसे एकाग्रता सधेगी, असार छूटेगा, हम सार की ओर अभिमुख होंगे। हमारा अहं विगलित होगा, ब्रह्म साकार होगा।

एक अध्यापक अपनी कक्षा ले रहे थे। उन्होंने पढ़ाते-पढ़ाते ही देखा कि एक बच्ची का ध्यान खिड़की से बाहर की ओर है। वह पेड़ की टहनी पर बैठी चिड़िया और उसकी चहचहाहट को देख सुन रही है। अध्यापक ने उसकी मेज थपथपाई और पूछा, 'किधर ध्यान है तुम्हारा?' छात्रा का ध्यान पढ़ाई में स्थिर नहीं था, किन्तु अस्थिर भी नहीं था। उसका ध्यान तो केन्द्रित था, पर टीचर की ओर नहीं वरन् चिड़िया की ओर। यह स्थिरता होते हुए भी अस्थिरता कहलायेगी। पढ़ते समय हमारा ध्यान पढ़ाई में केन्द्रित होना चाहिए, न कि किसी अन्य विषय-वस्तु में। यह स्थिरता आयेगी कैसे? एकाग्रता सधेगी कैसे? योग इसके सूत्र देता है।

हम जब जो कार्य करें उसे पूरी तन्मयता के साथ करें। यह हमारा कार्य के प्रति ध्यान हुआ। खाना खायें तो पूरे मन से खायें। पढ़ें तो पूरे मन से पढ़ें। भगवान का स्मरण करें तो पूरे मन से करें। पूरे मन से अपने कार्यों को पूरा करना ही एकाग्रता है, चित्त की स्थिरता है। हम किसी भी कार्य को करते समय उसमें पूरा रस लें। हम जितना रस लेंगे कार्य के प्रति हम उतने ही एकाग्र, स्थिर-चित्त और वफ़ादार हो पाएँगे। आइये, हम चित्त का ध्यान करें।

हम ध्यान के लिए बैठें और अपने भीतर-बाहर आ-जा रही साँस को ध्यान से देखें। अपनी साँस का दर्शक होना एकाग्रता को साधने का सबसे सरल तरीक़ा है। हम प्रयास करें कि साँस को लेने और छोड़ने के बीच जो हमें अंतर मिले, जो गेप मिले, हम उसे बढ़ाएँ। यह गेप, दो साँसों के बीच

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का यह फ़ासला जितना बढ़ेगा, हममें एकाग्रता की ध्यान-शक्ति उतनी ही ज़्यादा बढ़ेगी। साँस को हम मामूली न समझें। क्योंकि साँस के साथ ही हृदय की धड़कन चलती है। साँस के लेने और छोड़ने में केवल हृदय ही स्पंदित नहीं होता, वरन् चित्त भी होता है। चित्त के स्पंदित होने से ही विचार, विकल्प और वृत्तियाँ भी स्पंदित होती हैं। और जब ऐसा हो तो हम चित्त में उठने वाली वृत्तियों और विकल्पों के संचरण को उनसे अलग होकर देखें, उनके साक्षी बनें। चित्त-संचरण का साक्षी होना ध्यान और एकाग्रता की शुरुआत है।

दूसरे चरण में हम उन वृत्तियों और विकल्पों का निरोध करें। यही वह चरण है जब हमें अपने भीतर की अयोग्य बातों को निकाल फैंकना होता है। हम उन्हें निकाल फैंकने के लिए दीर्घ श्वास-प्रश्वास स्वीकार करें, लंबे-गहरे साँस लें, लम्बे-गहरे साँस छोड़ें। यह क्रम पाँच मिनट तक चलता रहे इससे हमारे मस्तिष्क में स्वच्छता तो आयेगी ही, नई ऊर्जा का भी संचार होगा। हमारी यह दीर्घ श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया धीरे-धीरे मंद होती जाये, सूक्ष्म होती जाये। इतनी बारीक होती जाये कि मानो श्वास चल रही है या नहीं, पता न चले। भीतर के आक्रोश में यह जो शून्यता आयी है, मन जो मौन हुआ है, वहाँ हम ध्यान का तीसरा चरण स्वीकार करें।

ध्यान का तीसरा चरण है किसी प्रिय मंत्र या सगुण-रूप पर चित्त की स्थिरता। इस चरण में हम किसी पवित्र सूत्र के अर्थ का चिंतन कर सकते हैं, परमात्मा के रूप अथवा नाम का स्मरण कर सकते हैं। ओम्, अर्हम या सोहम् पर चित्त को स्थिर कर सकते हैं। 'सोहम्' एक अच्छा बोध-सूत्र है। 'सः' परमात्मा का वाचक है और 'अहम्' अहंकार का। भीतर आ रही साँस 'सो' के बोध से गुजर कर आये और बाहर निकलती साँस हमारे अहंकार को विसर्जित करती हुई हो।

इस चरण में हम एक और उपयोग कर सकते हैं और वह है 'गुण-स्मरण'। यह एक ऐसा उपाय है जो मनुष्य को उदात्त बनाता है। मेरी समझ से यह उपाय सर्वाधिक मंगलकारी और जीवन सापेक्ष है। गुण स्मरण करें। इससे न केवल हमारा जीवन प्रेम, करुणा, त्याग और मर्यादा से ओत-प्रोत होगा, वरन ऐसा करके हम अपने आराध्य महापुरुषों से भी स्वतः संबद्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो जाते हैं। प्रेम का स्मरण करके हम एक प्रकार से भगवान कृष्ण और जीसस से जुड़ रहे हैं क्योंकि वे प्रेम के ही अवतार थे। करुणा से हृदय को आप्लावित करके मानो हम बुद्ध का सानिध्य पा रहे हैं। संयम और त्याग पर स्थिर-चित्त होकर हम महावीर की ही अर्चना कर रहे हैं। सत्य और मर्यादा पर एकाग्र होकर हम भगवान् राम में रमण कर रहे हैं। स्वयं के जीवन को गुणात्मक बनाने के लिए, अंतस्-चेतना को सद्गुणों से सुवासित करने के लिए यह एक श्रेष्ठ प्रयोग है।

ध्यान के चौथे चरण में हम इतने मौन हो जाएँ कि मानो हम तन-मन रहित हैं। केवल शांतिपूर्ण विश्राम, हम अस्तित्वमय हो जाएँ, स्वयं की ऊर्जस्वित स्थिति का आनन्द लें।

ध्यान के इस प्रयोग से गुजर कर जब हम उठेंगे, हम पायेंगे कि हम वह न रहे जो थे। हम कुछ नये हुए। हम में कुछ नवीनता आयी। जीवन के तमस् और उसकी जड़ता में काफ़ी कमी आयी। हम निर्भार हुए, प्रकाशवान हुए। सुबह-शाम हमें ध्यान के दौर से अवश्य गुजर लेना चाहिए। ध्यान को हम बड़ी सहजता से लें। जहाँ ध्यान करने बैठें, बाह्य परिस्थितियाँ हमारे अनुकूल हों। इसके लिए ज़रूरी है कि आस-पास का वातावरण शांत हो। ध्यान में घंटों बैठने की ज़रूरत नहीं हैं। ध्यान की मूल चीज़ हमारे हाथ लगनी चाहिये और वह है एकाग्रता, स्थिर-चित्तता, साक्षित्व। ध्यान के प्रति कोई ज़बरदस्ती न हो। ध्यान को हम बड़ी सहजता से लें। ध्यान के प्रति हम बड़े सहज हों। हम ध्यान में बैठें, ध्यान धरें और फिर ध्यानपूर्वक जीवन की विविध चर्याओं में लग जाएँ। कार्य से निवृत्त होने पर अपनी चेतना में, अपनी स्वसत्ता में वैसे ही लौट आएँ जैसे साँझ होने पर सूरज अपनी किरणों को अपने में समेट लेता है, पंछी नीड़ में लौट आता है। आसमान से घर की ओर, परिधि से केन्द्र की ओर।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान से शक्ति का रूपान्तरण

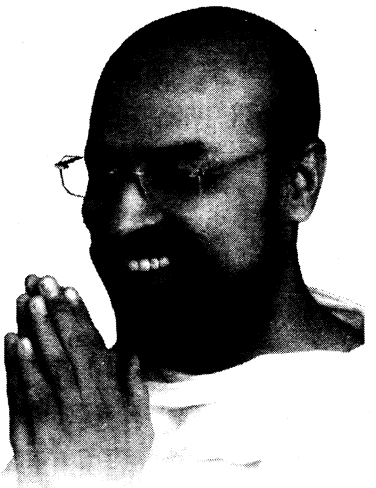

मनुष्य विशुद्धतः शक्ति का पर्याय है। शक्ति के दो आयाम हैं- बनाएँ या मिटाएँ। सृजन और निर्माण शक्ति के सार्थक सूत्र हैं। खंडहर और विध्वंस शक्ति का दुरुपयोग है। मनुष्य के पास शक्ति की बेमिसाल उपलब्धियाँ होना मनुष्य की अपनी विशेषता है, किन्तु हम अपने जीवन के विविध क्षेत्रों का कैसा उपयोग करते हैं, यह हमारे मानवीय विवेक पर निर्भर करता है।

ऐसे मन मिलने कठिन हैं जो निष्पाप और निष्कलुष हों। मनुष्य के मन के पास शक्ति का अकूत ख़ज़ाना है। मन की चेतना एकाग्र और तन्मय न होने के कारण ही उसकी ऊर्जा और क्षमता पतनशील बनी हुई है। मन की शक्ति को यदि एकाग्रता और आत्म-विश्वास का संबल मिल जाये,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उच्च मस्तिष्क से वह संबद्ध रहे, तो मनुष्य का मन प्रकृति का सबसे बड़ा चमत्कार साबित होगा।

मन की शक्ति, तन की शक्ति, वचन और धन की शक्ति, समाज और समूह की शक्ति... जब तक गुणात्मक और रचनात्मक बनी रहे तभी तक संसार के लिए हितकर है। वही यदि आपाधापी, गलाघोंट संघर्ष, निंदा और विध्वंस से जुड़ जाए, तो शक्ति, जो प्रकृति से मनुष्य को वरदान स्वरूप प्राप्त हुई है, मानवता के माधुर्य को काटने लगती है। इस तरह से वह स्वयं ही अभिशाप बन जाती है।

मनुष्य को चाहिए कि वह आत्मविश्वासपूर्वक अपने ऊर्जाकृत उच्च मस्तिष्क को जागृत और सक्रिय करे, ताकि उसके जीवन का आत्मिक और आध्यात्मिक पक्ष सदा सुदृढ़ रहे। अपनी शक्ति को सृजनात्मक और रचनात्मक बनाने में ही मनुष्य का विश्वास होना चाहिए। हमारी शक्ति का चाहे जैसा रूप क्यों न हो, वह विपथगामी हो या शिथिल, आत्मविश्वास से तो पर्वतों को भी हटाया जा सकता है। गाँधी विश्व के एक अच्छे, आदर्श राजनीतिक और राष्ट्र-पिता माने गए हैं। उनकी आत्मकथा जीवन के कई ऊहापोह भरे पक्षों को उजागर करती है। गाँधी का दृष्टिकोण गुणात्मक रहा, रचनात्मक रहा, आत्मविश्वास की भावना से ओतप्रोत रहा। औरों के लिए अपने स्वार्थों का त्याग करने वाले ही महापुरुष होते हैं। हिटलर इतिहास की तारीख़ों में दर्ज़ होने के बावजूद जनमानस की श्रद्धा के केन्द्र न बन पाए। हिटलर शक्ति का एक हिंसक रूप है। यदि उसकी शक्ति युद्ध और विध्वंसमुखी होने की बज़ाय रचनात्मक होती, तो वह भी गाँधी की तरह विश्व के आदर्श होते।

शक्ति का सृजनात्मक होना ही शक्ति का सार्थक स्वरूप है। सृजनात्मक शक्ति ही अमृत है; शक्ति का विध्वंसात्मक रूप ही विष है। जो विश्व के नक्शे पर रंग न भर पाये, उन्होंने इसके रूप को कुरेचा ही है। हम चाहे अच्छा करें या बुरा, उसकी प्रतिक्रिया और प्रतिध्वनि सूक्ष्म या असूक्ष्म रूप से सारे ब्रह्माण्ड तक फैलती है। आखिर जीवमात्र का पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध है। हम धरती पर आएँ हैं, तो खुशहाली के गीत गाएँ, सृजन करें, घर-परिवार-समाज को सजाएँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शक्ति के सार्थक सदुपयोग की जब बात आती है, तो महाभारत का एक प्रसंग उल्लेखनीय है। कौरव और पांडव साम्राज्य में समान-संभागी थे लेकिन कौरवों ने पांडवों को धकेल दिया और स्वयं सत्ता पर काबिज हो गए। अधिकारों के बावजूद पांडव असहाय-से हो गए, उन्हें खंडप्रस्थ हाथ लगा, लेकिन उन्होंने अपनी शक्ति को सृजनात्मक रूप दिया और खंडप्रस्थ 'इंद्रप्रस्थ' के रूप में तब्दील हो गया। इसके विपरीत रावण जैसी मिसालें भी हैं, जिन्होंने अपनी शक्ति का उपयोग विध्वंस रूप में किया। यही वज़ह है कि जो अपनी शक्ति को विध्वंस के मार्ग पर डाल देते हैं उनके पुतले ही जलाए जाते हैं।

विध्वंसमुखी प्रवृत्तियों को नव-निर्माण के क्षितिज प्रदान किये जा सकते हैं। गालियों से भरे होठों को गीतों का रस और संस्कार दे दिया जाए, तो होंठ हम सबको मुस्कान दे सकते हैं। जो हाथ वृद्धजनों की सेवा के लिए हैं, गिरे हुओं को उठाने के लिए हैं, यदि मनुष्य उन हाथों का उपयोग किसी को लाठी मारने या धक्का देने में करता हो, तो इसका दोष शक्ति को नहीं स्वयं मनुष्य को है। हम काँटों में से फूलों को खिलते हुए देखें, खाद गोबर की दिए जाने के बावजूद पौधों में से सुवास को फैलते हुए पाते हैं, तो हम अपने जीवन की विपथगामी शक्तियों को परिवर्तन की नई पुरवाई क्यों नहीं दे सकते! हमने क्रोध के दुष्परिणाम देखे हैं और प्रेम के शुभ परिणाम भी। यदि हम क्रोध के बज़ाय प्रेम तथा घृणा के बजाय करुणा को स्वीकार करें, तो इससे हमारा जीवन तो ख़ुशहाल होगा ही, औरों के साथ हमारे सम्बन्ध भी मधुर और मज़बूत होंगे।

मनुष्य में आत्मविश्वास की कमी है। उसे जैसी परिस्थितियाँ मिली हैं, वह उनमें सुधार करने की बजाय, उन्हीं में ज़िन्दगी गुजार देता है। उसमें रूपान्तरित होने की कामना नहीं है। अगर कामना है भी, तो रूपान्तरित हो जाने का आत्मविश्वास नहीं है। मनुष्य का अंश अवश्य है, किन्तु पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं-सा नहीं है, जो अपने में सुधार और विकास न कर सके। माना मनुष्य प्रकृति के कई धर्मों के आगे नतमस्तक है, किन्तु जीवन का कोई तयशुदा मार्ग नहीं होता है। मनुष्य चाहे तो अपने मार्ग को बदल सकता है। अच्छा होगा मनुष्य अपने मन में घर कर चुकी अकर्मण्यता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को, उज्जड़ता को उखाड़ फैंके; अपने सोये हुए आत्मविश्वास को जगाए, अन्तर्मन को नपुंसक न होने दे; वह हर समय आत्मविश्वास से ओतप्रोत हो। वह इस संकल्प का स्वामी हो कि मैं अपने साधारण विचारों का त्याग करता हूँ और असाधारण विचारों का स्वामी बनता हूँ, मुझे यह जीवन परमात्मा से सौगात-स्वरूप प्राप्त हुआ है। मैं इस सौगात के लिए कृतज्ञ रहूँगा और स्वयं की उच्च शक्तियों का उपयोग करते हुए संसार के लिए यादगार जीवन जीकर जाऊँगा।

हमारे अन्तर्मन में होने वाला यह दृढ़-संकल्प और आत्मविश्वास निश्चय ही जीवन को रोशनी से भरेगा, हमारा अन्तर्मन रोशनी का धाम होगा, हम विकास की ऊँची मीनारों को छू सकेंगे।

रूपांतरण ही जीवन की वास्तविक दीक्षा है। व्यवहार है तो व्यवहार, वाणी है तो वाणी, चिंतन है तो चिंतन, सम्यक-दिशा की ओर उनका अग्रगामी होना ही रूपान्तरण है। मिट्टी को अगर बीज और खाद मिले तो वह फूलों को ईजाद कर सकती है। मिट्टी को अगर किसी माईकल एंजेलो के हाथ लगे तो वह मिट्टी में से मूर्ति के सौन्दर्य को स्थापित कर सकती है। किसी महावीर और बुद्ध को साधना के स्पन्दन मिल जायें तो वह उनके जीवन का सिंहासन हो सकती है। जब मिट्टी किसी मूर्ति और दीपक को जन्म दे सकती है, बादल इन्द्रधनुष के वैभव को साकार कर सकता है तो फिर मनुष्य में ही नपुंसकता क्यों। हम अपने अन्तरमन में समायी नपुंसकता को त्यागें, आत्म-विश्वास के साथ अपने स्वभाव और शक्ति के रूपान्तरण के लिए सजग और प्रयत्नशील हों।

आज की तारीख़ में हमारा स्वभाव क्या है? हमारी जीवन-शक्तियाँ विपथगामी हैं या सत्पथगामी! हमें इसका जायदा लेना चाहिए ध्यान पूर्वक, धैर्य-पूर्वक, शान्ति पूर्वक। ध्यान आधार है रूपान्तरण का। ध्यान आयाम है शक्ति के सृजन का। मनुष्य अपना रूपान्तरण कर सकता है, इसलिए अनुरोध है, बाकी के प्राणी वैसे ही जीने को विवश हैं जैसी उनकी प्रकृति है। अगर मनुष्य समर्थ है और समर्थता का उपयोग न करे तो फिर मनुष्य, मनुष्य कहाँ हुआ चौपाये की सुधरी हुई नस्ल भर कहलाएगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बेहतर होगा हम ध्यान धरें। अन्तरमन में उठती-बैठती ऊर्जा-तरंग का ध्यान धरें। निमित्तों के उपस्थित हो जाने पर चित्त में उठने वाले संवेग-उद्वेग पर ध्यान धरें। जैसे ही हम अपने प्रति अपना ध्यान लाएँगे चित्त की उलट-बांसियाँ मौन हो जाएँगी। नतीज़ा यह होगा कि पराजय के कगार पर खड़ा इन्सान फिर भी जीत जायेगा। जितेन्द्रियता का एक चरण पूरा हो जायेगा।

हमारी जीवन - शक्तियाँ रूपांतरित हों, चेतनागत नई शक्तियों का जन्म हो, जीवन और जगत में नई सम्भावनाओं का अभ्युदय हो। ध्यान भीतर होने का अभ्यास है। जीवन की बहिर्मुखी ऊर्जा पर नियंत्रण है। ऊर्जा की वापसी है, पंछी की नीड़ में अन्तर्यात्रा है। बाहर से भीतर उतरो, भीतर की उच्छृंखलताओं को पहचानो, उन्हें अपने से अलग देखो। जैसे ही हम उन्हें अपने से अलग देखेंगे हमारी ओर से उन्हें मिलने वाली ऊर्जा मंद पड़ जाएगी और यों उनका उत्ताप ठंडा पड़ जायेगा। भीतर की उच्छृंखलता, भीतर के कषाय, भीतर का शोरगुल थमते ही अन्तरमन मानो शांति का उपवन हुआ, आनन्द का नन्दनवन हुआ। यानी तुम मन की वैतरणी से पार लगे, अपनी मौलिक शांति और निजता को उपलब्ध हुए। आत्मविश्वास जगाओ और आगे बढ़ो।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान : अन्तर्मन का आरोग्य

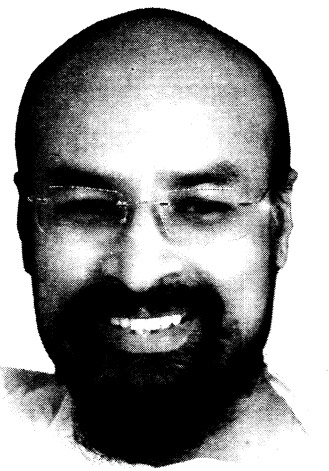

मन मनुष्य का प्रेरक है। मन की जैसी अवस्था होगी, मनुष्य को वैसी ही प्रेरणा प्राप्त होगी। दुर्विकल्पों से घिरे मन की प्रेरणा मनुष्य के लिए दुर्व्यवस्था का ही कारण बनेगी। वहीं संकल्प और आत्मविश्वास से भरे मन की प्रेरणा मनुष्य के उत्थान का कारण बनेगी। मन आधार है मनुष्य के जीवन का; मन ऊर्जा का प्रचंड स्रोत है मनुष्य के संहार और विस्तार का।

मन विकृत हो तो हमारे कार्यकलाप सम्यक् नहीं हो सकते। विकृत मन इंद्रियों का जब भी उपयोग करेगा इंद्रियाँ उन्हीं निमित्तों को ग्रहण करेगी, जिनसे उसके विकारों की पुष्टि और पूर्ति होती हो। मन विकृत तो आँखें विकृत, इंद्रियाँ विकृत। सौंदर्यमय काया के भीतर मन का मैला होना बिल्कुल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा है जैसे ख़ज़ाने के बीच बैठा जहरीला जन्तु।

कर्म का सही और गलत होना मन पर निर्भर करता है। हमारे क़दम अगर मंदिर की ओर बढ़ रहे हैं, तो उसका कारण भी मन है और हम मधुशाला के द्वार पर दस्तक देते हैं, तो उसका भी मन को ही आधार मानेंगे। संसार के प्रति आकर्षित मन ने भौतिकता को जन्म दिया है, वहीं अन्तर्मुखी मन ने अध्यात्म को। विज्ञान और शृंगार दोनों ही मन की ही देन हैं। एक विकसित मन की और दूसरे रसीले मन की। मन का परीक्षण ज़रूरी है। मन से पलायन करने से कुछ नहीं होगा। मन का शांत-सौम्य होना ज़रूरी है। मन दुनिया का सबसे तेज धावक है। छिन में यहाँ, छिन में कहीं का कहीं। जिस मन की गति इतनी तेज है उसे शून्य पर लाना बड़ा कठिन काम है। वह फिर-फिर भटक ही जाता है, बिखर ही जाता है, बिफर ही जाता है जब संत विनोबा से पूछा गया कि आप दिन भर क्या करते हैं तो संत ने कहा जब मैं अपना परीक्षण करता हूँ, कि दिन भर में मैं क्या करता हूँ, तो ध्यान करता हूँ, ऐसा ही उत्तर अंदर से मिलता है। यह बात एकाग्रता की सूचक है, तन्मयता और अन्तर्लीनता की द्योतक है।

बिगड़े हुए मन से सुधरा हुआ जीवन नहीं जीया जा सकता। मन तो मानो एक शक्तिशाली जानवर की तरह है। हमें उसे पालतू बनाना पड़ता है, शांत-सौम्य बनाना पड़ता है। हमें अपने मन को पहचानना होगा, स्वयं की जैसी भी स्थिति है, उसे पढ़ना होगा। अपने आपको पढ़ना जीवन का एक सुकृत पुण्य कार्य है। स्वयं में उतरकर स्वयं को पहचानना मानो किसी परमात्मा के मन्दिर की परिक्रमा लगाना है। अन्तरतम की गहराई में उतरना काशी-कर्बला की तीर्थ-यात्रा के समान है।

हम अपने मन से भागे नहीं। उसमें उठने वाले भँवर और तूफान से डगमगाएँ नहीं। भीतर से भय नहीं खाना है, वरन भीतर के भँवर को शांत करना है। क्यों न हम इक डायरी लिखें - मन की डायरी। मन को हम खुला हो जाने दें। उसे देखें, सजगता से पढ़ें और उसे डायरी में बिना किसी मन-इच्छा के लिख डालें। यह हमारी आत्मकथा होगी, मन की 'प्राइवेट डायरी' होगी। कहते हैं मन में अगर किसी तरह का गुब्बार भरा हो और उसे प्रकट कर दिया जाये, तो मन हल्का हो जाता है। भीतर बैठे मन को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अगर डायरी के पन्नों पर उकेर लिया जाये, तो इससे मन हल्का तो होगा ही, हम अपने आपसे मुख़ातिब भी होंगे, मन में जमे कूड़े-करकट को हटाने में भी मदद मिल सकेगी।

मनुष्य को स्वप्न आते हैं। हम अपने सपनों के प्रति लापरवाह रहते हैं, जबकि मन की पहचान करने के लिए सपने बड़े मददगार साबित हो सकते हैं। सपने तो हमारे लिए सी.आई.डी. का काम करेंगे। हर सपने में एक रहस्य छिपा होता है और वह रहस्य हमारे अन्तर्मन का होता है। आखिर जो मन में होगा, वही सपने के रूप में साकार होगा। सपने यदि डरावने हैं, तो इसका अर्थ है - मन में भय छुपा हुआ है; चोरी के सपने देखने को मिले तो इसका अर्थ है मन में चोर दुबका बैठा है; हत्या और बलात्कार से भरे सपने शैतान मन की अभिव्यक्ति है। इन सपनों के द्वारा हम अपने बिगड़े हुए मन की नस्ल को पहचान सकते हैं। भयभीत मन को चाहिए कि वह सकारात्मक सोच और आत्मविश्वास का स्वामी बने; विकृत मन को चाहिए कि वह मन से ऊपर उठकर अस्तित्व की उच्च सत्ता के संपर्क में आये। अवसाद और चिंतातुर मन के लिए समता और प्रसन्नता अचूक उपाय हैं। ऐसे ही रोते-बिलखते हुए मन को यदि हँसी-खुशी और प्रकृति का सुरम्य वातावरण दिया जाये तो मन मनुष्य के जीवन में नये क्षितिजों को उन्मुक्त कर सकता है।

डॉ. बेच ने एक ऐसी चिकित्सा-पद्धति का आविष्कार किया है जिसमें मानसिक लक्षणों के द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार होता है। बेच ने माना है कि शरीर के रोगों की जड़ शरीर में नहीं, मन में होती है। मन की कमजोरी, उसके लक्षण हाथ लग जाएं, तो मानसिक अवसाद का इलाज करके अवसाद के ज्वर को भगाया जा सकता है; मानसिक चिंता की चिकित्सा करके अनिद्रा की शिकायत को दूर किया जा सकता है; मानसिक भय का उपचार करके शारीरिक कमजोरी को शक्ति का जामा पहनाया जा सकता है।

बहुत बार ऐसा होता है कि शरीर के किसी एक रोग के लिए बीसों दवाएँ बदल दी जाती हैं, तब भी आरोग्य-लाभ प्राप्त नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में हमें रोग की मूल जड़ को तलाशना होता है और उस जड़ का संबंध मन से होता है। इस तरह मनस् चिकित्सा-पद्धति के द्वारा तन-मन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की हर तरह की बीमारियों पर विजय पाई जा सकती है।

अध्यात्म ने मनोस्वास्थ्य और उसके परिवर्तन के लिए ध्यान-योग का मार्ग प्रशस्त किया है। हम ध्यान के द्वारा अपने मन को जानें और शांत-तटस्थ भाव से अपने मन को पहचानें; मन के साक्षी बनें। मन की जिन विषयों के प्रति आसक्ति है, उनके प्रति अनासक्त हों; मन वृत्तियों के प्रति जागरूक बनें और मन के प्रति साक्षीत्व को सदा स्मृति में रखें। यह कठिन अवश्य है, किन्तु ध्यान के मार्ग से न केवल मन को पहचाना जाता है, वरन् वह स्वत: शांत भी होता है, विकृतियों की जड़ स्वत: कटती है। जब तक हम मन से संयुक्त रहेंगे, तो मन अपने बहाव में हमें बहा ले जायेगा, वहीं अगर हम मन से विलग रहें, तो मन पर स्वयं का स्वामित्व बना हुआ रहता है। ध्यान मनुष्य को शून्य और मौन का परिवेश प्रदान करता है; बुद्धत्व का कमल और संबोधि की सुवास प्रदान करता है।

हमें अपने मन को हर रोज पढ़ लेना चाहिए, उसे आत्मविश्वास के जल से प्रक्षालित कर लेना चाहिए। चूंकि वातावरण विकृत और असंयमित है, इसलिए मन के मार्गों पर रोज झाड़-फूँक कर साफ-सुथरा कर लेना चाहिए; संकल्पों के साथ जीवन के हर नये दिन में प्रवेश करना चाहिए। मन पर जब हम ध्यान देंगे, तो मन में कुछ ज्यादा ऊहापोह महसूस होगी, क्योंकि मन में मैल है, विकृतियाँ हैं। जैसे-जैसे मैल कटेगा कंदील का काँच साफ होगा, भीतर जल रही ज्योति स्वत: जीवन को ज्योतिर्मय करेगी। हम जीवन में नियमन और परिमितता लाएँ, ख़राब चीज़ें न देखें, ख़राब किताबें न पढ़ें, व्यवहार को शुद्ध करें और शुभ दृष्टि के स्वामी बनें, सर्वकल्याण की कामना करें और सबके प्रति मंगल-मैत्री का भाव रखें। एक ओर से मन को सही वातावरण दिया जाए और दूसरी ओर से मन पर ध्यान देकर उसे सम्यक् मार्ग प्रदान किया जाये, तो ऐसा करके हम अपने हाथों अपने आपको बहुत बड़ा वरदान देंगे। पवित्र मन के द्वारा मिली प्रेरणा जीवन के लिए वेद-वाणी के समान है, परमात्मा के अशेष आशीष-वचन की तरह है।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान का मन्दिर : मनुष्य का हृदय

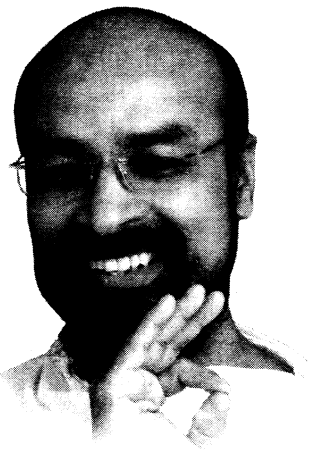

संसार के हर देश में तीर्थ है और हर नगर में मन्दिर। मनुष्य बड़े श्रद्धाभाव के साथ इन मन्दिरों और तीर्थों की यात्रा और अर्चना करता है। यह हमारी मानवीय मन की उदात्तता है। मैं एक ऐसे मन्दिर और तीर्थ की चर्चा कर रहा हूँ जो उस हर जगह है जहाँ मनुष्य खुद है। आम मन्दिर या तीर्थ की यात्रा करनी हो, तो हमें वहाँ तक जाना पड़ता है, किन्तु यह एक ऐसा मन्दिर है जिसके लिए कहीं जाना नहीं पड़ता। केवल आनन्द-भाव से उसमें उतरना भर होता है। सम्भव है मन्दिर जिस कौम की ओर से बना हुआ है उसमें दूसरी कौम के आदमी को जाने की मनाही भी हो पर हम जिस मन्दिर की ओर बढ़ रहे हैं वहाँ जाति-पाँति, राजनीति, वर्ग-वर्ण-पंथ का कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है। और वह मन्दिर, वह तीर्थ हमारा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपना अंतर्हृदय है।

संसार के केन्द्र में आज मनुष्य खड़ा है और मनुष्य की धुरी उसका अपना अंतर्-हृदय है। अंतर्-हृदय ही संसार का सबसे पवित्रतम तीर्थ है। जिसे हम घट-घट वासी कहते हैं, वह वास्तव में हमारे हृदय में ही वास करता है। यानी प्राणिमात्र का अंतर्यामी उसके हृदय में हिलोरें ले रहा है। यदि हम हृदय में उतरकर अंतर्यामी का स्मरण करें और उसकी भक्ति में अंतरलीन हो जाएँ, तो आप अपने प्राणों में परमात्मा की प्राण-धारा को ऊर्जस्वित होते हुए पाएँगे।

परमात्मा तो बरस रहा है। धरती के हर कोने-कोने में वह झर रहा है। अगर हमें नहीं मिल रहा है तो उसका कारण यह है कि हमने अपने हृदय का पात्र औंधा कर रखा है। पात्र सीधा हो, रीता हो, भर जाने को आतुर हो और वह न भरे यह मुमकिन ही नहीं है।

प्राणिमात्र के अन्तर्-हृदय में ज्योति जल रही है। हमारा शरीर उस ज्योति के चारों ओर का प्रकाश है। हमारी मुश्किल यह है कि हम केवल प्रकाश को महत्त्व दे रहे हैं। प्रकाश के उस उत्स को नहीं, केन्द्र को नहीं जहाँ से प्रकाश आ रहा है। मनुष्य का अंतर्-हृदय ही तो मनुष्य की चेतना का ज्योति-केन्द्र है। धरती का भगवत्-केन्द्र तो यही है। बस, अंतरलीनता चाहिए। हम हृदय में उतरें और आत्म-बोध के साथ हृदय के मानसरोवर में ही हंस-विहार करें।

आप हृदय से परमात्मा को पुकारें। परमात्मा की रसधार स्वतः आप पर झरेगी। आप ऐसे अहोभाव से, आनन्द-भाव से भर उठेंगे कि मानो परमात्मा के प्यास की लौ सुलग उठी है। अभीप्सा जग गई है। एक ऐसी टीस, एक ऐसी पीड़ा, एक ऐसी आग, एक ऐसी प्रार्थना कि हम अपने प्राण में परमात्मा की धारा पाते हैं।

मेरे प्राणों में ओ प्रियतम, पीड़ा का संसार बसा दो॥
छूकर मेरी काली पलकें, चूम-चूमकर भीगी पलकें।
बुझ न सके जो इस जीवन में, ऐसी व्याकुल प्यास जगा दो॥
अपने पास बुलाकर प्रियतम, लेकर मेरा मौन समर्पण।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिल न सकूँ फिर इस जीवन में मुझको इतनी दूर हटा दो॥
आशाओं की लता सुखाकर अरमानों के नीड़ जलाकर।
बुझ न सके जो इस जीवन में, मन में ऐसी आग जला दो॥
मुझे बनाकर छोड़े पागल, नयन बहाएँ आँसू पल-पल।
मेरे उर-अंतर में प्रियतम, ऐसी गहरी टीस बसा दो॥
अश्रु-हास की माला लेकर, विरह-मिलन के गीत सँजोकर।
जहाँ तुम्हें ढूँढ़ें जीवन भर, उस अनंत का पथ बतला दो॥

'मेरे प्राणों में ओ प्रियतम, पीड़ा का संसार बसा दो।' एक ऐसी पीड़ा का संसार, जिसे अभीप्सा कहते हैं, अमृत की अभीप्सा। हृदय में वह अभीप्सा जग गई तो तब तक विश्राम नहीं लेगा, जब तक रस का निर्झर फूट न जाएगा, हृदय हृदयेश्वर से आप्लावित न हो जाएगा। हृदय है ही ऐसा धाम - प्रेम का धाम, शांति, करुणा, भक्ति और आनन्द का धाम। काश, सारा संसार हृदयवान् हो जाए। हृदय की धुरी पर उसका जीवन और जगत् केन्द्रित हो जाए।

आज मानवता के पास मनस्विता और बौद्धिकता का तो बड़ा विस्तार है। अगर कमी आई है, तो केवल इस बात में कि मनुष्य का हृदय से संपर्क टूट गया है। मनुष्य हृदय-हीन हुआ है। उसकी संवेदना हाशिये पर जा बैठी है। हृदयवान व्यक्ति ही जीवन और जगत की उसकी अंतरंगता को जी सकता है। जिसका हृदय मर गया, उसके जीने को क्या तुम जीना कहोगे? उसका जीना उसके जीवन पर ही व्यंग्य है। वह इंसान नहीं, चलती-फिरती लाश है।

आजकल मनोविज्ञान और उससे संबंधित पहलुओं का विस्तार हुआ है। मनुष्य को मनोविज्ञान समझाया जा रहा है। मनोचिकित्सालय चल रहे हैं, जबकि जीवन का सत्य यह है कि मन स्वयं रोग है। मन और मस्तिष्क से जुड़ी सारी दवाइयाँ केवल उन्हें सुस्त ही करती हैं। हर समय आदमी नींद से खोया रहता है। मैं हर मनोचिकित्सक से कहूँगा कि तन के रोगों का समाधान मन में नहीं, वरन हृदय में है। हृदय समाधान का केन्द्र है, स्वास्थ्य का केन्द्र है। चेतना और प्राणों का केन्द्र है। मन का रोगी हृदय में उतरे। मन जैसे-जैसे हृदयस्थ होता जाएगा, उसे हृदय से स्वयमेव ही,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संजीवनी की धारा मिलती जाएगी। मन का हृदय में स्थित होना मन की सम्यक् चिकित्सा है। जो निद्रा न आने से परेशान हैं, वे भी हृदय में ध्यान धरें। आँखों से हृदय को झाँकें। हृदय में शांति का अनुभव करें और शांत हृदय से सो जाएँ। ऐसा करने से न केवल उन्हें प्रिय और मधुर नींद आएगी, वरन् सुबह उठोगे, तो अपने आपको इतना तरोताज़ा पाओगे कि मानो सूर्य की रोशनी पाकर कोई गुलाब का फूल खिला हो।

हृदय में उतर कर, हृदयवान् होकर आप संसार में जीयें तो संसार आपके लिए स्वर्गलोक होगा। हृदयहीन होकर संसार को देखोगे तो संसार न केवल तुम्हें नरक की खान लगेगा, वरन् स्वार्थ, हिंसा और क्रूरता के चलते हम स्वयं को भी नरकवासी बना बैठेंगे। प्रसन्न हृदय से संसार को देखोगे तो तुम्हें काँटें कम, फूल ज्यादा दिखाई देंगे। ऐसा नहीं कि दुनिया में काँटे नहीं होंगे। वे काँटे होंगे किसी और के लिए। तुम तक तो पहुँचते-पहुँचते वे बेअसर हो जायेंगे। संभव है वे काँटे तुम्हारे लिए फूल भी बन जाएँ। काँटा तो वास्तव में कसौटी है।

कोई अगर पूछे कि इंसानियत का अर्थ क्या है तो मेरी ओर से ज़वाब होगा - हृदयपूर्वक जीना। इंसानियत का बीज हृदय है। इंसानियत गंगा है तो हृदय उसका उत्पत्तिस्थल गंगोत्री। मनुष्य का हृदय औरों को दुःखी देखकर करुणाद्रवित होता है और उस करुणा से अभिभूत होकर मनुष्य जो कुछ करता है है वही मानवता और इन्सानियत कहलाती है। यह सारा जहाँ आपसे प्रेम और करुणा की अपेक्षा करता है। भगवान करे आप सच्चे इंसान हों। इंसानियत का अर्थ आपके जीवन से मुखर हो।

मुझे याद है : एक स्त्री को देखकर लोग घृणा किया करते थे क्योंकि उनकी नज़र में वह पापी थी। उसने पाप का सेवन किया था। उस पापी स्त्री ने एक प्यासा कुत्ता देखा, जिसकी जीभ लटक गयी थी। वह प्यास के मारे मरा जा रहा था। बिचारा जानवर पानी के लिए तड़प रहा था, पानी के लिए प्रार्थना कर रहा था। उस स्त्री ने उस कुत्ते को देखा। उसने अपनी जूती उतारी और उसमें पास के कुए से पानी भर लायी। उसने वह पानी कुत्ते को पिला दिया। प्यासे की जान बच गयी; लोगों की राय बदल गयी। उन्होंने कहा, 'भगवान् ने इसके पापों को माफ़ कर दिया है। इससे पाप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भले ही हो गया हो, पर यह जानती है कि इंसानियत का क्या अर्थ है।'

भगवान उन लोगों से प्यार करते हैं जिनका हृदय दयालु है, जिनमें करुणा है, जो औरों को पीड़ित देखकर मोम की तरह पिघल सकते हैं। इस्लाम की हदीसों में कहा गया है कि एक बार जन्नत के फरिश्तों ने खुदा से पूछा, 'या अल्लाह! क्या दुनिया में चट्टानों से भी कोई सख़्त चीज़ है?' 'हाँ' खुदा ने कहा 'लोहा चट्टान से भी सख़्त होता है जो चट्टान को तोड़ सकता है।' पूछा गया और लोहे से सख़्त, जवाब मिला, 'आग। क्योंकि वह लोहे को पिघला सकती है।' फ़रिश्तों ने पूछा, 'और आग से बढ़ कर?' खुदा ने कहा, 'पानी, वह आग को बुझा सकता है।' पूछा गया पानी से ज़्यादा सख़्त? ज़वाब मिला 'हवा, जो पानी में लहरें पैदा कर सकती है।' पूछा गया उससे मज़बूत चीज़ है? खुदा ने कहा, 'मनुष्य का हृदय जो दया-द्रवित होकर औरों की पीड़ा में मोम की तरह पिघल जाता है, अपने दुख-सुख की परवाह किये बिना औरों की मदद किया करता है। औरों के सुख-दु:ख में समानुभूति का स्वभाव रखता है। ओह! कैसे समझाया जाए कि हृदय से बढ़कर जीवन का कोई केन्द्र नहीं है। हृदयवान को ही संसार में जीने का हक है क्योंकि संसार उसे अपने हृदय में बसाकर रखता है। तुम ऊँची-ऊँची बातें छोड़ो, तर्क-वितर्क, चर्चा-उपदेश से स्वयं को अलग हटाओ और हृदय के होकर हृदय से सब के साथ जीओ।

हृदयवान होने के लिए पहला सूत्र है : और अधिक प्रेमपूण बनो। जीवन को प्रेम से ओत-प्रोत करो। मित्र तो मित्र, अगर कोई शत्रु भी है तो उसे भी अपने प्रेम से वंचित मत रखो। कोई शत्रु है तो उसे क्षमा कर अपना प्रेम प्रगट करो। कोई दूर का है तो उसे भोजन के लिए आमंत्रित करके अपने करीब का बनाओ। शरणागत की रक्षा करो और अतिथियों का सम्मान। बड़ों का विनय करो और बराबर वालों को मित्रता का अहसास दो। बोलो तो इस तरह कि वाणी नहीं, प्रेम और मुस्कान के फूल झर रहे हैं। कबीर तो ग्राहक में भी राम को निहारते थे। वास्तव में हमारा प्रेम इतना विस्तृत हो कि हमारा औरों के साथ होने वाला व्यवहार कोरी औपचारिकता न हो। वह व्यवहार भी परमात्मा को समर्पित किया गया प्रेम हो। प्रेम से बढ़कर आखिर पूजा क्या!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रेम ही पूजा है; प्रेम ही प्रणाम। प्रेम ही आशीर्वाद है और प्रेम ही वरदान। प्रेम में जहाँ शीरी-फरहाद, हीर-रांझा और लैला-मजनूं की जीवन व्यथाएँ हैं, वहीं नेमि-राजुल का वैराग्य, सीता-राम की मर्यादा, राधा-कृष्ण की रासलीला और मीरा-गिरधर की अंतरलीनता है। तुम प्रेम को जीओ, प्रेम तुम्हें जीयेगा। प्रेम से बढ़कर न कोई सिद्धान्त है, न कोई धर्म। प्रेम से हटकर न कोई शास्त्र है, न परमात्मा का रूप। सत्य तो यह है कि प्रेम ही धर्म का सार है, प्रेम ही जीवन की आत्मा है। बग़ैर प्रेम का जीवन नीरस और भारभूत है। प्रेम हो हृदय का। प्रेम से बढ़कर कोई पुण्य नहीं। जिस प्रेम में स्वार्थ और पाप है, वह प्रेम नहीं, प्रेम के नाम पर अंकुरित हुआ विकार है। मन का प्रेम विकार पर समाप्त होता है और हृदय का प्रेम आत्मभाव में जाकर परिणत और प्रतिष्ठित होता है। मेरे लिए प्रेम जीवन का सार है, इंसानियत की आत्मा है, परमात्मा की पूजा है।

हृदयवान होने के लिए दूसरा सूत्र है- करुणावान बनो। अपने हृदय को करुणा से ओतप्रोत करो। करुणा प्रेम का ही अगला चरण है। प्रेम की अति मानवीय अभिव्यक्ति का नाम ही करुणा है। भगवान बुद्ध करुणा के अवतार रहे हैं। करुणा में जहाँ अरिष्टनेमि का त्याग, शिवि की दया और बुद्ध की कोमलता है, वहीं चंडकौशिक की क्षमा और मदर टेरेसा की सेवा है। कृष्ण की गौ-सेवा और राम का अहिल्या-उद्धार करुणा की ही कोख में हुआ। अशोक का युद्ध-त्याग, लिंकन की जीवदया तथा मेनका गांधी का पर्यावरण-प्रेम हमारी मानवीय भावनाओं में करुणा की ही प्राण प्रतिष्ठा है।

मनुष्य का प्रेम जब लुटने को तैयार हो जाता है, औरों के लिए अपने आप को मिटाने के लिए तैयार हो जाता है, उस समय हृदय जिस भाव से ओतप्रोत है करुणा उसी का नाम है। करुणा ही हृदय की राजमाता हैं, करुणा ही मानवता की मुण्डेर पर मुहब्बत का जलता हुआ चिराग है।

करुणा ही तो वह भाव है जो मनुष्य को मोम की तरह पिघला देती है। जो न पिघले वह इंसान कहाँ, पत्थर की दास्तान है। संत तुलसीदास ने कहा है-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संत हृदय नवनीत समाना,
कहा कविन पै कहा न आना।
निज परिताप द्रवै नवनीता।
पर-दुख द्रवै सो संत पुनीता॥

कहते हैं : 'संत हृदय नवनीत समाना - संतों और सज्जनों का हृदय मक्खन की तरह कोमल होता है, पर तुलसीदास कहते हैं कि यह बात तो ठीक है मगर इस बात को कहना नहीं आया। क्योंकि मक्खन तो अपने नीचे आँच आते ही पिघल पड़ता है जबकि संत वह है जो औरों पर आई हुई आँच को, आपदा को, विपदा को, पीड़ा को देखकर पिघल जाता है। एक मनुष्य तब दूसरे मनुष्य के लिए अपने स्वार्थों का त्याग करता है। अपने सुखों का वितरण करता है। ऐसा करना मनुष्य के द्वारा मनुष्य के लिए कुरबानी और बलिदान है।

हम अपने हृदय में करुणा का निर्झर फूटने दें। हमें करुणा का कोई निमित्त मिले या न मिले, हमारी करुणा में कोई कटौती नहीं होनी चाहिये। तुम्हें अगर महावीर की अंहिसा और जीसस के प्रेम को जीना हो तो मैं कहूँगा कि हम सब करुणा को जीएँ। दुनिया द्वारा जीसस को सलीब पर लटकाया जाना पर इसके बावजूद जीसस द्वारा यह प्रार्थना करना कि हे प्रभु, इन्हें माफ कर, ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं- यह वास्तव में करुणा का अनुपम उदाहरण है। जीसस का प्रेम वास्तव में करुणा को ही मिला हुआ दूसरा उपनाम है। मैं आपको करुणा के मन्दिर में आने के लिए निमंत्रण देता हूँ। आप आइये किसी अनाथालय में और वहाँ जरूरतमंद असहाय बच्चों के लिए अपना प्यार उड़ेलिए। उन्हें अपनी खुशियों का हिस्सा बनाइये। आखिर वे सब भगवान के ही रूप हैं। किसी पत्थर की प्रतिमा पर आपकी श्रद्धा दूध चढ़ा सकती है, तो क्या भगवान की इस जीवित प्रतिमा को आप दूधपान नहीं करवा सकते। मन्दिर में जाकर आप अपना मत्था टेकते हैं यह आपका समर्पण और सौभाग्य है, पर मन्दिर के बाहर बैठकर भीख माँगकर अपना गुजारा करने वाले बच्चे के आँसू पोंछना क्या उस घट-घटवासी भगवान की पूजा नहीं है? हमारी धर्म-किताबें कहती हैं कि भगवान न जाने किस रूप में तुम्हारे द्वार पर पहुँच जाये। ऐसी स्थिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में घर-द्वार पर आये हुए किसी याचक को खाली हाथ लौटा देना क्या भगवान को लौटाना नहीं है? रोटी के दो टुकड़े पाने के लिए घर में घुस आये कुत्ते की पीठ पर चार लाठी बरसा देना क्या उस साँई की कमर को लहू-लूहान करना नहीं है? भले मानुष! तुम केवल एक रूप में ही भगवान को क्यों देखते हो? सभी रूप उसके हैं। सच तो यह है कि तुम भी उसी के रूप हो। मैं भी उसी का रूप हूँ। वही मैं हूँ। न मैं, न तुम, जो कुछ है सब वही है। फिर इतनी स्वार्थखोरी क्यों? मायाजाल में उलझाव क्यों? हमारा नसीब अगर और लोगों के भी काम आता है तो भगवत्कृपा, यह हमारा परम सौभाग्य है।

हृदयवान होने का तीसरा मगर बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है : सदा आनंदित रहो। परिस्थितियाँ चाहे अनुकूल रहें या प्रतिकूल, हमारी आत्मा का आनंद मंदिर के अखण्ड दीपक की तरह प्रज्वलित रहे। आनन्द का खण्डित होना जीवन की प्रतिमा का खण्डित होना है। खण्डित प्रतिमा क्या काम की? आनंद-रहित जीवन किस अर्थ का! सम्भव है दुनिया तुम्हें कष्ट दे। तुम्हारे साथ विश्वासघात करे मगर तुम अपनी महानतम में कमी मत आने दो। तुम अपने आत्म-विश्वास पर अविचल रहना। दुनिया तो देगी मीरा को जहर, क्योंकि उसके पास जहर के अलावा देने को है ही क्या? दुनिया तो ठोकेगी महावीर के कानों में कीलें, दुनिया तो लटकाएगी जीसस को सलीब पर। दुनिया तो काटेगी मंसूर के पाँव, मगर ऐसा होने से महावीर की सहिष्णुता के आनंद को थोड़े ही बेधा जा सकता है। जीसस के प्रेम के सुख को थोड़े ही लटकाया जा सकता है। सुकरात के सत्य के गौरव को थोड़े ही विषपान कराया जा सकता है। मंसूर के 'अनलहक' को थोड़े ही काटा जा सकता है। जिसके पास जो होगा वह वही देगा। किसी के द्वारा हमें नालायक कहना यह उसकी कोई बीमारी होगी, मज़बूरी होगी। किसी के नालायक कहने से हम अपने आप को नालायक क्यों मान बैठते हैं? नालायक के बदले में अगर हमने भी ज़वाब में नालायक ही कहा तो इसका अर्थ यह हुआ कि हमने स्वीकार कर लिया कि उसने जो कहा हम वह हैं।

हमें तो सदा प्रसन्न चित्त रहना चाहिए। हर परिस्थिति के बावजूद आनंद-विभोर रहना चाहिए। महावीर की सामायिक, कृष्ण के समत्व-योग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और पंतजलि की समाधि का यही विधायक और व्यावहारिक रूप है। बहुत बड़े रशियन संत फ़क़ीर ग्रीशां ने हमेशा प्रार्थना में यही कहा, 'ओ मेरे परम पिता! तू मुझे प्यार करने वालों का भला कर और मेरे शत्रुओं को माफ कर।'

असली करुणा वही है जो हमारे आनंद को खण्डित न होने दे। हम जगत् के सारे दु:खों को अपने हृदय में आमंत्रित करें और अपने हृदय के सुखों को सारे जगत में लौटा दें। दु:ख पी लें और आशीष उड़ेल दें। आश्चर्य! जब हम सारे संसार के दु:खों को अपने भीतर लेते हैं तो वे दु:खी नहीं रहते। हृदय उन्हें रूपांतरित कर देता है। दु:ख की धारा हृदय में डूबकर सुख से सराबोर हो जाती है। दु:ख-सुख में, आनन्द में बदल जाता है। तब हृदय से जो हिलोर उठती है उसमें आनंद का उत्सव होता है। प्राणों में परमात्मा की प्राणधारा होती है। व्यक्ति अपने जीवन का अनुशास्ता और सम्राट होता है।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्म-बोध : शांति का सूत्रधार

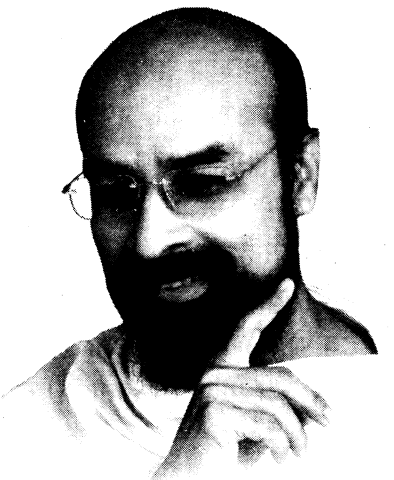

मनुष्य का जीवन प्राणिमात्र के लिए महान वरदान है। आत्म-स्मरण हमारे जीवन की सबसे बड़ी संपदा है; आत्म-विस्मरण जीते जी मृत्यु। आत्म-स्मरण से बढ़कर कोई पुण्य नहीं; आत्म-विस्मरण से बढ़कर कोई पाप नहीं। स्वयं का सतत स्मरण बनाये रखना ही जीवन में धर्म, अध्यात्म और ध्यानयोग को आत्मसात् किये रहना है। कोई अगर मुझसे पूछे कि अध्यात्म का बीज मंत्र क्या है? अध्यात्म को सिद्ध करने की मूलभूत पगडंडी क्या है तो ज़वाब होगा स्वयं का सतत स्मरण। जिसे स्वयं का स्मरण है, स्वयं की चेतना के प्रति सजगता है, वह हर पल, हर क्षण आत्मा को जी रहा है। उसकी साँसों में, उसकी धड़कन में, यहाँ तक उसकी करवट बदलने में भी उसके अंतर्यामी का प्रकाश है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैं हूँ, हमें इस बात का हर समय बोध रहना चाहिये। 'मैं' यानी हमारा मूल अस्तित्व। यहाँ 'मैं' का संबंध व्यक्ति के 'अहं' से नहीं है। हमारे अहंकार के विगलित हो जाने पर हमें स्वयं के भीतर जिस आत्म-स्थिति का अनुभव होता है 'मैं' का उसी से सम्बन्ध है। यहाँ 'मैं' से सम्बन्ध स्व-सत्ता से है, 'मैं' का सम्बन्ध आत्म-तत्त्व और जीवन-तत्त्व से है। हम कुछ भी करें लेकिन हमारी ज्ञान-दशा से हमारा 'मैं' नहीं छूटना चाहिए। हम सब कुछ करते हुए भी निज सत्ता से जुड़े रहें।

राजा जनक को गीता में निस्पृह और अनासक्त की संज्ञा दी गयी है। एक राजा राज्य का संचालन करते हुए भी यदि स्वयं के आत्मस्वरूप का स्मरण बनाये रखता है, आत्मरत रहता है, तो वह राजा रहते हुए भी राजर्षि है। यदि किसी आदमी के हाथ में तेल का कटोरा पकड़ा दिया जाये, कटोरा भी लबालब हो, और यह कहा जाये कि उस कटोरे को हाथ में लेकर नगर के साज-शृंगार का निरीक्षण कर आओ, पर शर्त यह है कि कटोरे में से एक बूँद तेल भी गिर पड़े तो उसकी धड़ तलवार से अलग कर दी जायेगी। वह पूरा शहर भी घूम आयेगा, पर उससे पूछो 'तुमने क्या देखा?' ज़वाब होगा, पूरी यात्रा में मात्र तेल का कटोरा ही।

जिसे तेल के कटोरे का स्मरण रहेगा वह नगर में घूमकर भी आखिर निष्पृह ही तो बना रहा। खास बात यह नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो। महत्त्व तो इस बात का है कि कहीं तुम खुद को तो नहीं भूल बैठे। सम्यक्त्व का यही तो ध्येय है कि सब कुछ करते हुए भी 'मैं हूँ' यह बोध और अनुभव बरकरार रहता है। कुंदकुंद ने कहा कि सम्यक् दृष्टि जीव केवल अचेतन ही नहीं, वरन् चेतन पदार्थों का भी उपयोग कर ले तो भी इससे उसे कोई आँच नहीं आती। उल्टे कर्ममुक्ति की साधना ही सधती है।

आप कुछ भी कीजिए, देखिए, गाइए, बोलिए, स्वाद लीजिए, लेकिन यह बोध बनाये रहिये कि 'मैं हूँ'। अगर ऐसा होता है तो आप अपने मन को बड़ा शांत और सौम्य पाएँगे। मुनित्व की अर्थवत्ता को आप अपने जीवन में चरितार्थ होता हुआ पाएँगे! 'मैं हूँ' के बोध से जुड़कर हम वास्तव में जीवन के शाश्वत रूप से जुड़ रहे हैं, शाश्वत जीवन को जी रहे हैं।

'मैं हूँ' यह हम सोचें नहीं, वरन् इसका अनुभव करें। यह भाव हमारे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विचारों की सतह पर न हो, बतौर बोध के हो। आत्म-स्मरण और आत्म-बोध में विचार-विकल्प की उधेड़बुन होती ही नहीं है। जो होता है वह शांत सरोवर ही होता है। केवल आकाश होता है। शून्य, रिक्त, पूरी तरह ब्लेंक, मगर ऊर्जस्वित, आनंदित। शून्यता का अर्थ सुन्नता नहीं है, कब्र की चुप्पी नहीं है। शून्यता का अर्थ है केवल अस्तित्व की अवस्थिति, एक जागृत मौन, जीव का अखण्ड उत्सव रूप। दिन में जब भी मौका लगे, भीतर झाँकें और देखें 'मैं हूँ'। कोई मानसिक या बौद्धिक दृष्टि से नहीं, वरन बोध की दृष्टि से, जाने कि 'मैं हूँ'।

हमारी दिक्कत यह है कि हम उसे तो जान रहे हैं जिसे जाना जा रहा है, मगर उसे भूल जाते हैं जो जान रहा है। हमारा ध्यान और बोध केवल ज्ञेय से ही जुड़ा हुआ है। ज्ञाता को न जाने हमने कौन-सी कथरी उढ़ा दी है। यह तो बिल्कुल ऐसी ही बात हुई जैसे कोई कपड़े के चिथड़े में हीरे-जवाहरात को बांध कर रख देता है। हमें और तो सब याद रहा अगर कुछ भुलाया हुआ है तो वह स्वयं हम ही हैं; आत्म-विस्मृति ही है।

मैंने सुना है : किसी आदमी को भूल जाने की आदत थी। उसकी पत्नी उसकी आदत से परेशान हो उठी। आखिर उसे अपने पति से कहना पड़ा कि अगर तुम इतना ही भूल जाते हो, तो क्यों न कामकाज कागज पर नोट कर लिया करो।

अगले दिन पत्नी ने काम-काज की फ़ेहरिस्त उतार कर पति को पकड़ा दी। पति शाम को खाली हाथ जब घर लौटा तो पत्नी चौंकी। पत्नी ने पूछा, 'क्या सामान नहीं लाये?' पति ने पूछा, 'कौन-सा सामान'? पत्नी ने कहा, 'जो कागज पर लिखकर दिये थे।' पति चौंका, 'आह! वह कागज तो देखना याद ही नहीं आया।'

औरों को भूलने के चक्कर में हम उस कागज को भी भूल बैठे, जिस पर काम करने की सूची बनायी थी। यह तो सरासर आत्मघाती है। जो याद रखते हैं वह और तो सब याद रख लेते हैं सिवाय स्वयं को छोड़कर। हमें अपना स्मरण रहना चाहिए। आत्म-स्मरण चिर-सुख के लिए, चिर प्रसन्नता के लिए, सच्चिदानंद के लिए है सत्कार्य में ही चित्त को लगाते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए आनंदित रहना, आत्मस्थ रहना यही सच्चिदानंद है। स्थिर चित्त और स्थिरप्रज्ञ रहने का यही सूत्र है।

चित्त में तरंगे उठती हैं, संसार की ओर प्रवृत्ति भी होती है, किन्तु यह सब करते हुए भी हमें दोनों के प्रति सजग रहना चाहिए। सजगता यानी एक ऐसी स्थिति कि हम सर्व के साक्षी भर हो जाएँ। सम्भव है हवा के झोंके से जीवन के सरोवर में लहरों की चंचलता उठ आये। लेकिन हमें यह स्पष्ट बोध रहना चाहिए कि सारी अशांति और चंचलता परिधि पर हो रही है। और जैसे ही हमें इस बात का अहसास होगा कि यह कंपन, तरंगायन परिधि पर ही हुआ है, मुझ में नहीं। आप स्वयं को तत्क्षण शांत होता हुआ पायेंगे। ऐसा होने से परिधि भी शांत हो जायेगी और केन्द्र पर भी शांति की सुवास रहेगी। परिस्थिति चाहे जैसी सामने आये, मन चाहे जिस दौर से गुजर पड़े मगर साक्षी, साक्षी रहे। साक्षी शांत रहे, साक्षी सजग रहे।

मान लीजिये, क्रोध पैदा हुआ। आप न तो क्रोध का दमन कीजिए और न ही प्रकट। आप यह जानें कि क्रोध परिधि पर है। स्वयं को इस से अलग देखें। आप पायेंगे कि यह प्रयोग बड़ा सार्थक रहा। क्रोध के प्रति साक्षित्व लाते हुए न केवल क्रोध विलीन हो जाता है, वरन् क्रोध की तरंग शांति की ऊर्जा बन जाती है। साक्षित्व के केन्द्र में रूपान्तरण की अद्‌भुत शक्ति है। हम जो भी चीज हैं उससे अलग हटकर उसे देखें। आप पाएँगे कि केवल परिधि ही काँप रही थी, मैं तो अब भी वैसा ही शांत हूँ जैसा शांति के क्षणों में रहा।

बेहतर होगा क्यों न हम हर परिस्थिति या उठापटक को नियति का खेल ही समझ लें। यह विश्वास हृदय में स्थापित कर लें कि जो हो रहा है, या जो हुआ है, वह होनहार ही रहा है। मैं होनी में हस्तक्षेप नहीं करूंगा। हृदय में स्वीकार किया गया यह सूत्र न केवल हमें शांत रहने का अवसर देगा वरन् हमारी शांति को अखण्ड और अनवरत बनाये रखेगा। हमारी तो चित्त के प्रति केवल शांत-मौन-सजगता रहे, 'मैं हूँ' का बोध बरकरार रहे। 'मैं' मूर्छित न हो जाये। 'पर' में प्रसन्नता और 'स्व' में सजगता - हमारी स्थिति उससे बाधित और प्रभावित न हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब किसी युवक ने एक संत पर लाठी का प्रहार किया, लाठी उसके हाथ से छिटक गयी। संत न लाठी उठायी और युवक को यह कहते हुए आवाज़ दी कि अपनी लाठी तो लेते जाओ। संत के साथ चल रहे एक अन्य पथिक ने संत से पूछा कि युवक को लाठी मारने की बज़ाय आप लाठी लौटा रहे हैं। क्या आपको क्रोध नहीं आया? संत ने कहा, 'जो बात तुमने मुझे पूछी है वही मैंने अपने आप से पूछी। मेरी अंतर-आत्मा ने कहा जिस पेड़ के नीचे तुम खड़े हो अगर उसकी शाखा, संयोगवश टूटकर तुम्हारे कंधे पर गिर जाती तो क्या तुम उस पेड़ पर लाठी चलाते? पथिक ने कहा, 'पेड़ से शाखा का टूटकर हम पर गिर जाना महज संयोग ही होता।' संत ने कहा, क्यों न इसे भी हम संयोग ही समझ लें।

जो जीवन में घटित होने वाली घटनाओं को संयोग की संज्ञा दे देते हैं, उनकी न परिधि अशांत होती है न केन्द्र उन्हें तो सदा शांति का ही बोध रहता है।

आप इसे यों समझें कि किसी की बात पर आप बड़े उत्तेजित हो गये। आप बदले में कुछ करें उससे पहले ही वह कह दे, 'मैंने तो तुझसे मज़ाक किया था।' आप आश्चर्य करेंगे कि यह सुनते ही आपकी उत्तेजना दो पल में काफ़ूर हो गयी। आप शांत हो गये। भले ही इसे मज़ाक कहो, पर अगर सब कुछ को तुम मज़ाक ही समझ लो और सदा अंतरमौन की मस्ती में रहो, तो ऐसा करके हमने शाश्वत जीवन का आविष्कार कर लिया। स्वयं के वास्तविक सुख-शांति को जीवन में जीने का सूत्र पा लिया।

कहते हैं : एक युवक साधना के प्रति निष्ठाशील हुआ और ऐसा करने के लिए उसने संन्यास का संकल्प स्वीकार किया। घर वालों से उसने अनुमति चाही, पर सबने साफ इंकार कर दिया कि अगर तुमने संन्यास ले लिया तो हम सब तुम्हारे पीछे अपने प्राण दे देंगे। युवक ने अपने गुरु के सामने अपनी समस्या रखी। गुरु ने पूछा कि क्या तुम अपने संकल्प पर दृढ़ हो? युवक ने स्वीकृतिमूलक ज़वाब दिया। गुरु ने उसे साँस रोकने का एक प्रयोग बताया और प्रयोग को आजमाइश करने के लिए कहा। युवक घर पहुँचा, साँस रोकी और घर के बीच आँगन में सो गया। घरवालों ने नाड़ी देखी और युवक को मरा हुआ पाया। घर के और मुहल्ले के सभी लोग रोने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगे। माँ, भाई और पत्नी तो छाती पीट-पीट कर रोने लगे।

श्मशान-यात्रा की तैयारी चल रही थी तभी उसके गुरु वहाँ पहुँच गये। उन्होंने सारी स्थिति भाँपी और कहा कि आपके इस बेटे को जीवित तो किया जा सकता है, मगर घर-द्वार पर आई हुई मौत खाली हाथ नहीं लौट सकती। आप में से कोई हो जो इसके लिए मरने को तैयार हो, तो युवक जीवित हो सकता है। यह सुनते ही सभी के चेहरों के तोते उड़ गये। सभी एक दूसरे की बगलें झाँकने लगे। मरने वाले के पीछे कोई भी मरने को तैयार नहीं हुआ।

लोग युवक की मृत्यु का दुखड़ा तो भूल ही गये। वातावरण पूरी तरह निस्तब्ध हो गया। घर वालों ने कहा, 'मरने वाला तो मर गया। हमारा कोई एक ही बेटा या भाई थोड़े ही है। एक चला भी गया तो क्या हुआ? हम अपना काम चला लेंगे।' संत ने एक-एक से पूछा। सब नट गये। युवक ने स्वयं को सबसे निस्पृह पाया। उसके मन में उनके प्रति रहने वाला मोह भी विगलित हो गया। अचानक वह उठ बैठा। लोग चौंके क्या यह सब संन्यास और मृत्यु का अभिनय था? युवक ने इतना ही कहा मेरे बिना तुम सब लोगों के चल जायेगा इसलिये मैं निश्चिंत हूँ। घर वाले कोई तरह की प्रतिक्रिया करते, उससे पहले ही युवक संत के साथ रवाना हो गया।

हम स्वयं को ऊपर उठाते जायें, उन्मुक्त होते जायें, जो हो रहा है जो चल रहा है वह तो ऐसे ही चलता रहेगा, अपना राम तो अपने में मस्त रहे। हमें सदा आत्म-बोध रहे। आत्म-स्मरण और आत्म-बोध ही स्वयं के जीवन की वास्तविक संपदा है। आँख खोलें, जगत् को देखें; पलकें झुकाएँ और फिर अपने को देखें। जागरूक दशा के साथ देखें तो आप पायेंगे कि जो है सब परिधि पर है यहाँ तक कि अपना शरीर, अपना मन भी! केन्द्र में तो केवल एक ही 'अंतर-बोध' है - 'हाँ, मैं हूँ।'

जीवन-पथ से गुजरते हुए हमारे हाथ में यह आत्म-बोध का दीप थमा हुआ रहे, यह पर्याप्त है। अप्प दीपो भव- आप अपने दीपक स्वयं हैं। आत्मदीप सदा ज्योतिर्मान और प्रकाशवान रहे, यही सजगता चाहिये।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शून्य में समग्रता की खोज

आकाश इतना व्यापक, विराट और अनंत है कि हर आकार में वह निराकार समाया हुआ है। स्थूल जिस सूक्ष्म के आधार पर खड़ा है, वह आकाश यानी मौन, आकाश यानी ऊर्जस्विततता, आकाश यानी जो हमें आधार दे। जिसे हम आकाश की संज्ञा देते हैं, वह तो आकाश है ही। एक साँस से दूसरी साँस के बीच हमें जिस विराम का, अन्तराल का अनुभव होता है, वह भी आकाश ही है। वो साँसों के बीच अंतरनिहित रिक्तता आकाश है। उससे भी गहरा सत्य यह है कि साँस में भी आकाश निहित है। बग़ैर आकाश के अस्तित्व का कोई भी घटक मूर्त्त रूप नहीं ले पायेगा। आकाश की लोक और अलोक में हर जगह सर्वव्याप्ति है।

आइंस्टीन ने अस्तित्व की संरचना में दो मुख्य तत्व माने हैं - एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है टाइम और दूसरा है स्पेस। टाइम यानी समय; काल-चक्र। स्पेस यानी खालीपन रिक्त आकाश। समय परिवर्तन लाता है और आकाश परिवर्तन होने के लिए स्थान देता है। प्राणी मात्र में निहित आत्म-तत्त्व मानो आकाश स्वरूप ही है। आप जिस भवन में बैठे हैं उसमें जहाँ-जहाँ खालीपन और रिक्तता है वह हर रिक्तता वास्तव में आ़काश ही है। रिक्तता का नाम ही आकाश है। आकाश नाम की कोई चीज़ दुनिया में नहीं है। हम ऊपर की ओर देखते हैं तो हमें आकाश दिखाई देता है। हमें लगता है कि पृथ्वी एक धरातल है जिस पर हम खड़े हैं और आकाश दूसरा धरातल जो पृथ्वी के माथे पर है। हक़ीक़त में आकाश का कोई धरातल नहीं है। जो चाँद-सितारे हमें ऊपर आकाश में दिखाई देते हैं वे आकाश के किसी धरातल पर टिके हुए नहीं हैं। पृथ्वी अपने गुरुत्वाकर्षण पर केन्द्रित है और सूरज, चाँद सितारे अपने गुरुत्वाकर्षण के कारण। आकाश ऊपर भी है, नीचे भी है। आकाश तो हम में भी है, आकाश-फूलों में भी है। वह हवा में उड़ते पक्षियों में भी है, और पानी में तैरती मछलियों में भी है। आकाश का संयोग हो, सहयोग हो तो ही दो अणु आपस में एक दूसरे से संबद्ध हो सकते हैं, मिश्रित हो सकते हैं। बग़ैर आकाश के तो साकार होना ही नामुमकिन है।

आदमी को अगर आकाश का संदर्भ समझ में आ जाए तो वह स्वयं ही आकाश-स्वरूप हो जाए। मन की उठापटक स्वत: ही विलीन हो जाए। स्थूल शरीर में निहित सूक्ष्म शरीर उसे ज्ञात हो जाए। यूँ मन को केन्द्रित करना चाहो तो मन देवों का वरदान पाकर भी केन्द्रित नहीं हो पाता, पर जैसा आकाश हम बाहर देखते हैं वैसा ही भीतर देखने लगें, तो देह का भाव और मन का भाव स्वत: बिखर जाता है। भीतर-बाहर का आकाश एक हो जाता है।

भीतर के आकाश में प्रवेश करने के लिए पहले हम बाहर के आकाश में प्रवेश करें। जिस समय आकाश पूरी तरह निरभ्र हो, बादल रहित, उस समय या तो आराम-कुर्सी पर बैठ कर या आराम से लेटकर आकाश को देखें, देखते रहें, निश्चल भाव से देखते रहें। देखने में इतने लयलीन हो जाएँ कि देखने वाला भी आकाश में खो जाए, तभी तत्क्षण हम पाएँगे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि हमारी पलकें स्वतः झुक गई हैं। तुम्हें जैसे ही अपना अहसास होगा तुम स्वयं में आकाश को प्रगट हुआ पाओगे। भीतर और बाहर का आकाश एकाकार हो जाएगा। वह क्षण जीवन-मुक्ति को जीने का क्षण होगा। यह अभिनव क्षण है, अमृत क्षण है। ऐसे क्षणों में जितना विस्तार हो, हमारी स्व-सत्ता के लिए उतना ही मंगलदायी है।

ध्यान रहे, जब हम आकाश को देखें तो केवल आकाश को देखें, आकाश के बारे में सोचें नहीं। आकाश को देखें और आकाश में खो जायें। देखना तो केवल देखना भर ही होगा। सोच अगर उसमें बाधक न बना तो यह देखना निश्चित तौर पर हमारे भीतर-बाहर के आकाश को एकाकार कर देगा। आकाश को देखते-देखते आदमी आकाश होता है। फूलों को एकटक निहारो तो तुम्हारा अंतरमन फूल ही हो जाता है। परमात्मा की निरंतर लयलीनता रहे तो परमात्मा हममें प्रगट हो ही जाते हैं। जिसे आकाश दिखा है, अपने अंतस् का आकाश दिखा है, अपने अंतस् का आकाश अनुभव में आया है वह प्राणी मात्र में निहित आत्मा को, आकाश को सहजतया निहार लेगा। ऐसा होने पर वह स्वयं तो सतत आनंदित रहेगा ही, उसका औरों के साथ व्यवहार भी अत्यंत सहज सौम्य और सौहार्दपूर्ण होगा। अन्तरमौन तो स्वतः घटित होगा; चेतना की मुस्कान तो स्वतः स्फुरित होगी।

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

लाली को तो देखते-देखते हमें भी ललाई आ गई। लाली में प्रवेश किया तो हम भी लाल हो गये। सीधी-सी बात है कि काजल की कोठरी में जाओगे तो कालिमा चढ़ेगी और लाली में डूबोगे तो चितवन में ललाई फूटेगी। प्रेमिका को याद करोगे तो वह ही हो जाओगे। स्वयं को जिस तरह का धरातल देना चाहोगे, तुम्हें वैसे ही धरातल की सुविधा मिलेगी। साधना का मूल बीज है अंतर-मौन और इसे पाने के लिए हम एक ऐसे विराट तत्त्व का आलंबन ले रहे हैं, उस आकाश का जो अपने आप में परम मौन, परम शून्य, परम अस्तित्ववान है।

आप ध्यान धरें, पलकें मूँद लें और आँखों को देह के भीतर की ओर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खोल लें। अपने भीतर अत्यन्त सजगता से सविस्तार देखें। तुम्हें अपने भीतर, स्थूल शरीर के भीतर तुम एक रिक्तता का अनुभव करोगे। प्राणधारा का प्रवाह अनुभव करोगे। जो रिक्तता है वह आकाश है और जो प्राणधारा है वह तुम्हारी स्व-सत्ता की चैतन्य-ऊर्जा है। शरीर के अंतर-भाग को देखने के बाद अपने हृदय के भाग में लौट आओ और वहाँ अंतस् आकाश को खोजो। तुम अपने हृदय और मस्तिष्क को इतना शांत और शून्य देखो जितना कि मेघ-रहित आकाश हो, यातायात-रहित मार्ग हो। अंतस् का आकाश, अंतस् की शून्यता में तुम्हारा प्रवेश हो गया तो विचार और विकल्प स्वतः विलीन हो गये। मन गिर ही चुका, तुम निर्विकल्प हुए, तुम आत्म-स्वरूप को, आत्म-भाव को, अंतर-मौन को उपलब्ध हुए।

काया मुरली बाँस की, भीतर है आकाश।
उतरें अंतर-शून्य में, थिरके उर में रास॥

यह काया तो बाँस की मुरली की तरह है। मुरली में समायी जो रिक्तता है, जो खालीपन है, वही तो आकाश है। उस रिक्तता में उतरना उस अंतर्-शून्यता को पहचानना ही जीवन में संगीत को जन्म देना है। हर मुरली में संगीत की सुवास है, संगीत का सामर्थ्य है। हम अपने में उतरें, अपने को जानें।

संत बालशेम की कहानी है। कहानी क्या है साधना के कुछ सूत्र उसमें समाये हैं। कहते हैं, बालशेम प्रतिदिन नदी पर जाते और आधी रात को वापस लौट आते। कुछ न करते, बस बैठते थे, नदिया के किनारे वे लहरों को देखते, एकटक देखते रहते बग़ैर पलकें झुकाये मानो लहरों का त्राटक कर रहे हों। यह उनकी बैठक का, ध्यान का पहला चरण होता था। लहरों को देखने में वे पाते कि उनकी चित्त की चंचलता खो चुकी है। उनका चित्त स्थिर और मौन हुआ है। उनकी पलकें स्वतः झुक जातीं और तब वे अपने भीतर शांत, मौन, स्थिर, स्व को देखते रहते, देखने का आनन्द लेते। यह वास्तव में आत्म-दर्शन का आनन्द था, आत्म-उत्सव का आनन्द था। डूबे रहते वे अंतस् के आकाश में, अंतर-गुहा की रोशनी में। नदियों को देखना और स्वयं को देखना यही उनकी ध्यान-पद्धति थी, यही उनकी साधना थी, और एक गहरे अर्थ में उनकी तो यही कमाई थी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बालशेम जिस रास्ते से नदी-तट की ओर जाते, उसी रास्ते पर किसी अमीर आदमी का महल पड़ता। महल के बाहर खड़ा पहरेदार बालशेम को रोज नदी से आधी रात को लौटते हुए देखता। वह चौंकता बालशेम को देखकर। उसके मन में प्रश्न उठता कि यह आदमी आधी रात को ही नदी-तट की ओर से क्यों लौटता है, वह नदी-तट पर क्या करता है? छानबीन करनी चाहिये। एक शाम उसने बालशेम का पीछा किया। उसने बालशेम को घंटों नदी किनारे बैठे देखा। बालशेम ने कुछ और नहीं किया। आधी रात हुई, वह नदी किनारे से लौटने लगा। पहरेदार ने कई दिन तक उसका पीछा किया, लेकिन उसने हर बार यही पाया कि वह नदी किनारे केवल बैठता है और कुछ नहीं करता।

आखिर एक दिन पहरेदार ने संत बालशेम को रोका और पूछा, 'न जाने तुममें ऐसी क्या ख़ासियत है कि तुम्हारा यह मौन मुस्कराता चेहरा सदा मुझे उद्वेलित और अभीप्सित करता है। आज सोचा, तुमसे बात कर ही ली जाये, उसने पूछा, 'तुम्हारा मकान कहाँ है?' संत बालशेम मुस्कराये। बालशेम कुछ बोले उससे पहले ही पहरेदार ने एक प्रश्न और पूछ लिया आखिर तुम कौन हो? काम क्या करते हो? बालशेम ने कहा, 'मुझे पता है कि तुम रोज मुझे इस रास्ते से आते-जाते देखा करते हो। मैं वही काम करता हूँ जो तुम करते हो।' पूछा, 'मतलब'? बालशेम ने कहा, 'पहरेदारी'। यह सुनकर वह पहरेदार तो और चौंका बालशेम ने कहा कि तुम महल के बाहर पहरा देते हो और मैं महल के अन्दर। तुम्हारा महल यह बँगला है और मेरा महल मैं ही हूँ। तुम औरों के लिए पहरा देते हो और मैं अपने लिए। तुम औरों पर नज़र रखते हो और मैं अपने पर। पहरेदार ने कहा मैं तुम्हारी बात नहीं समझ पाया। मुझे पहरेदारी के लिए पैसा मिलता है, तुम्हें तुम्हारी पहरेदारी से क्या मिलता है?, बालशेम मुस्कराए और कहने लगे, 'मित्र तुम्हारा पैसा तो महीने में खर्च हो जाता है। मुझे इस पहरेदारी के बदले में जो रुपया हाथ लगता है वह पृथ्वी की हर संपदा से ज्यादा मूल्यवान है। यह एक ऐसी संपदा है जिसमें जितना डूबो उतना ही गुणा-दुगुणा होती है, दुगुनी-चौगुनी बढ़ती है।'

पहरेदार बालशेम के प्राणवंत शब्दों से इतना आंदोलित और अभिभूत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो गया कि उसने पूछा, 'ओ महान आदमी! क्या मैं भी उस महान संपदा का उपभोक्ता हो सकता हूँ? संत ने कहा, 'तुम्हें तो साधना-पथ वैसे भी मिला हुआ है। पहरेदारी तो तुम्हें करनी आती है। बस, दिशा बदलने की बात है। महल के बाहर की बज़ाय महल के भीतर पहरेदारी करो। अपने भीतर, 'स्व' को देखते हुए।'

हर व्यक्ति अपना मालिक खुद हो। हम ही अपने गुरु और हम ही अपने तारक। 'पहरेदारी' इसमें तो साधना का बीज है, ध्यानपूर्वक देखना ही ध्यान है। सजगतापूर्वक अंतरमन की पहरेदारी करना ही ध्यान की बैठक है। अंतर्-मौन और अंतर्-शून्य उपलब्ध होना चाहिए। चाहे वह बाहर के आकाश को देखकर उपलब्ध हो या अंतस्-आकाश को देखकर।

घट-घट में आकाश समाहित है। अंतस्-आकाश में जीने वाला अपनी अंतर्-आत्मा और अखण्ड आनंद का स्वामी है। वह निज में रहते हुए वैसे ही सर्वव्याप्त और अस्तित्व की समग्रता से जुड़ा हुआ रहता है जैसे यह व्यापक, विराट, अनंत आकाश है।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शून्य में शाश्वत के दर्शन

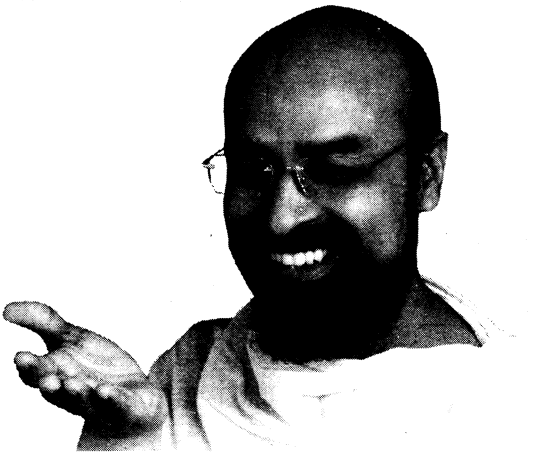

हमारे भीतर, हर मनुष्य, हर प्राणी के भीतर अस्तित्व का एक अंतहीन अंतर-मौन विराजमान है। यह मौन ही मनुष्य की शून्य, महाशून्य की दशा कहलाती है। इस शून्यता में जो बोध अनुभवगम्य बनता है हमारे अस्तित्व का उसी से संबंध है। मैं कौन हूँ? उस अंतर-मौन में इसका समाधान हमारे साथ लगता है।

हमारा अंतरतम-केन्द्र मात्र शून्य ही है। एक ऐसा शून्य, जो हमारे स्थूल अनुभवों में नहीं आ सकता। जो अनुभव में आता है वह द्रव्यात्मक होता है, पर्यायमूलक होता है, सत्तामूलक नहीं होता। शून्य का सम्बन्ध सूक्ष्म से है। शून्य के साकार होने से ही जीवन में शाश्वत का आविष्कार होता है। हम जो कुछ कर रहे हैं वह बोधमूलक कम, क्रियामूलक ज्यादा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। क्रिया ही क्रिया को प्रभावित करती है। क्रियाएँ चाहे जितनी भी हों, हमारे अंतरतम का केन्द्र उस हर क्रिया से अलिप्त खड़ा रहता है। झंझावात चाहे जैसा उठे मगर सागर का तल उससे प्रभावित नहीं हो सकता।

सभी उथल-पुथल ऊपर-ऊपर है। क्रोध है तो क्रोध और काम है तो काम, हर क्रिया परिधि पर चल रही है। मनुष्य का अंतरतम-केन्द्र शून्य ही रहता है, मौन ही रहता है। कितनों के साथ रहने के बावजूद उसकी एकात्मकता को कोई ख़तरा नहीं पहुँचता। जो साहचर्य होता है वह मन और देह का ही होता है। हमारा अंतरतम तो निस्पृह ही बना रहता है। माँ की कोख से जन्म लेने के कारण न तो उसे जन्मधर्मा कहा जा सकता है और न ही देह के गिर जाने से उसे मरणधर्मा। हम अपने बोध में अलिप्त रह सकें या नहीं, वह तो अलिप्त ही रहता है।

मनुष्य तब तक बोध के साथ अलिप्त नहीं रह पाता जब तक वह उस शून्य का स्वामी नहीं हो जाता। शून्य के साथ न लगने के कारण जीवन में तमस् का प्रभाव चलता है, प्रकाश का अभाव बना हुआ रहता है। अंधकार वास्तव में प्रकाश के अभाव का ही नाम है। जिसे मैं शून्य और मौन कह रहा हूँ वह वास्तव में हमारी चेतनामयी दशा है, आत्ममुक्ति को जीने की दशा है। चेतना प्रकाशमयी है यानी एक ऐसा प्रकाश जहाँ अंधकार नहीं है। स्वयं की निर्विकार स्थिति ही चेतना की प्रकाशमयी स्थिति है। जब मैं प्रकाश कह रहा हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं कि यह प्रकाश कोई सूरज जैसा, चाँद जैसा या दीपक की रोशनी जैसा होगा। जिसे अंधकार कह रहा हूँ वह अंधकार कोई ऐसा नहीं जिसे तुम सूरज के डूब जाने पर रात को देखा करते हो। यह तो अंधकार और प्रकाश का स्थूल रूप है। अंधकार से मेरा मलतब है मूर्च्छा से, विकार और वासना से। यह सब मनुष्य की निद्राचारिता है। निद्राचारिता यानी तुम जो कुछ किये जा रहे हो वह सब नींद में ही किये जा रहे हो। तुम अभी क्या सोच रहे हो, क्या चाह रहे हो, क्या कर रहे हो, स्वयं तुम्हें भी पता नहीं है। हम सोच रहे हैं पर क्यों सोच रहे हैं, हमें यह ज्ञात नहीं है। कई चीज़ें हम ऐसी कर रहे हैं यह न जानते हुए कि क्यों? बस एक अचेतन नींद में बहे जा रहे हैं।

इस नींद से जागना ही अध्यात्म की ओर कदम बढ़ना है। इस नींद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से जगना ही, जीवन में आध्यामिक मूल्यों का उदय है। चेतन की प्रकाशमयी आनंद-दशा की ओर आँख का खुलना है। हम जो कुछ कर रहे हैं, आखिर यह तो ज्ञात रहना चाहिए कि क्यों कर रहे हैं? निद्रा और मूर्च्छाचारिता में जो कुछ करेंगे, उससे हमारा तमस् और प्रगाढ़ होगा।

सजग दशा के साथ जो कुछ करेंगे उससे तमस् का, अंधकार का कोहरा छँटेगा। आत्म-जागृत व्यक्ति अगर विषय का भी सेवन कर लेगा तो उससे तमस् में कटौती ही होनी है। कहते हैं महावीर ने विवाह किया। संभव है इसके पीछे उनके माता-पिता की इच्छा रही हो, किन्तु महावीर के संतान भी हुई। महावीर आत्मचेता पुरुष थे। उनके द्वारा किया गया सेवन भी प्रकाश की ओर उठाया गया कदम था। महावीर का यह ऐसा कदम भी जिससे अतीत की संस्कार-धारा टूटे। भीतर में कहीं गहरे में समाया अंधकार बाहर विसर्जित हो जाये।

हम प्रकाश के निर्विकार पथ की ओर बढ़ें और बीच मार्ग में विकार की कोई कारा हमें लपकने की कोशिश करे उससे तो बेहतर यह है कि हम अपने भीतर के तमस् को पहले ही समझ लें। भीतर का तमस् पहले ही बाहर उलीच आएँ। विकार बाद में उन्हीं को परेशान करते हैं, जो निर्विकार पथ में बढ़ने से पहले विकार-मुक्त नहीं हुए है। नतीज़ा यह होगा कि ऐसी स्थिति में भले ही व्यक्ति अपने अंतर-मौन की ओर बढ़ जाये, लेकिन जैसे ही वह सूक्ष्म में स्थूल की ओर लौटकर आयेगा, तमस् उसे विविध रूपों में परास्त करने की कोशिश करेगा। तमस् की समझ ही तमस् से मुक्त होने का उपाय है। जिसने देह के वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया वह देहधर्मी होकर विचारों में नहीं उलझेगा। वह तो सदा इस बात को जानने के लिए उत्सुक होगा कि देखूं देह के पार क्या है? वह मन के मकड़जाल और माया-जाल में नहीं उलझेगा। वह इस बात के लिए उत्सुक होगा कि मन के सोच-विचार, मन के संकल्प-विकल्प, मन के कोलाहल के पार क्या है। उसकी जिज्ञासा चेतना की ओर उन्मुख होगी, उस सत्य की ओर जो जीवन की असलियत है जो अजर और अमर है, जो ज्ञान, दर्शन और आनन्द की अखण्डता को अपने में समाहित किये हुए है।

बेहतर होगा हम इस शरीर के प्रति सहज और सजग हों। निद्राचारिता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की बजाय सजगता के साथ इससे मित्रता रखें। देहभाव से मुक्त होने का अर्थ यह नहीं कि हम देह की उपेक्षा करें, उसे सताएँ, उसके प्रति दुश्मनी रखें। देह और मन दोनों के प्रति सजगता लाएँ, उनके प्रति तटस्थता और निरपेक्षता लायें।

देह तो बाँस की पोली पोंगरी है। दीखने में हाड़, मांस, रुधिर, वीर्य पर जैसे बाँस की पोंगरी भीतर से बिल्कुल खाली होती है, हमारी देह ऐसे ही रिक्त है। हम दस मिनट के लिए देह को निढ़ाल छोड़ दें। तन-मन में विश्राम लाएँ और शांत मन के साथ यह अनुभव करें कि हम एक बाँस की पोंगरी की तरह हो गये हैं। शरीर बाँस की पोंगरी है। हड्डी-मांस ये सब बाँस के ही हिस्से हैं। जैसे ही हम अपनी देह को बाँस की पोंगरी की तरह देखेंगे आप आश्चर्य करेंगे कि हमें अपनी देह में एक परम शांत ऊर्जस्वित, स्वयं में शून्य को साकार होता हुआ पायेंगे। ज़रूरी है कि हमारा मन शिथिल हो जाना चाहिए।

हम जैसे शवासन में शिथिलीकरण का सुझाव देते हैं ऐसे ही मन को भी शिथिल करें मन के शिथिलीकरण के लिए सुझाव दें - मन शांत, विचार शांत, सोचो मत; सोचने जैसा कुछ नहीं है; जागो, जाग रहा हूँ, शून्य हो रहा हूँ; साक्षी हूँ, द्रष्टा हूँ आदि। जब हम शिथिल मन होकर, शांत मन होकर, शरीर को बाँस की पोंगरी का अनुभव करेंगे तो आप पायेंगे कि आप इस समय समाधि के करीब हुए। आपके अंत:करण में शून्यता और दिव्यता का उदय हुआ। ऐसी स्थिति में बाँस-बाँस नहीं रहता, बाँस भी बाँसुरी हो जाता है और आपके अंतरघट में रहने वाला अंतर्यामी भगवान उसे बजाने लग जाता है।

हमें एक बार शून्य में उतरने की पगडंडी हाथ लग जाती है तो हम सबके साथ जीते हुए भी निस्पृह बने रहते हैं। हमारे सामने विकार के निमित्त उपस्थित हो जाने के बावजूद हम निर्विकार बने रहते हैं। देह के द्वार पर मृत्यु की ओर से दस्तक दे दिये जाने के बावजूद हम अपने आप में अविनाशी बने रहते हैं।

शुरू-शुरू में तो हम स्वयं को बाँस की पोंगरी की तरह देखते हैं, अनुभव करते हैं, लेकिन जैसे-जैसे शून्य से हमारा सरोकार होता जाता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्तित्व के अंतर-मौन से एकाकार होते जाते हैं, वैसे-वैसे बाँस का बोध विलीन होता जाता है। तब हमारी स्थिति चेतना की प्रकाशमयी स्थिति होती है, तब हम अस्तित्व के साथ एकाकार होते हैं और परमात्मा हमारे साथ।

हम स्वयं को परिधि से केन्द्र की ओर लाएँ। क्रिया में रचने-बसने की बजाय सत्ता के आसन पर अपनी बैठक लगायें। हमारी ओर से जो कुछ भी हो, हमारे प्रति जो कुछ भी हो, हमारी सजगता और प्रसन्नता में बिखराव नहीं आना चाहिये। हम काँटों के बीच भी खिले हुए रहें। ऐसा नहीं कि क्रियाएँ नहीं होंगी। क्रियाएँ तो होंगी ही, पर हमारी ओर से हर क्रिया के प्रति निरपेक्ष मुस्कान भर होगी, न किसी का गिला, न किसी का अभिमान।

ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर।

अपना राम तो अपने में मस्त। किसी ने हमें उकसाने की कोशिश की तो भी हमारी ओर से उसके लिए मुस्कान भर हो। किसी ने क्रोध और आवेश में गाली भी निकाली तो भी हमारी ओर से मुस्कान ही होगी। हमारी मुस्कान से चाहे कोई चिढ़े या पिघले, उसकी वो जाने; मैं तो इतना-सा ही कहूँगा कि ध्यान से अपने आपको देखो और जरा मुस्कान दो। मुस्कान ही हमारी ओर से औरों को मिलने वाला उपहार हो जाये। प्रिय-अप्रिय, मान-अपमान, हानि-लाभ, हमारी ओर से हर स्थिति के प्रति मुस्कान-ही मुस्कान। इससे अंतरमन प्रतिक्रियाओं के जंजाल से छूटेगा, अंतरमन में शांति और स्वच्छता घटित होगी और भीतर में प्रसन्नता का सर्वोदय होगा। अंतरमन में स्वच्छता, अंतरमन की शांति और हर हाल में मस्ती-चेतना की प्रकाशमयी स्थिति को जीने का यह आधार सूत्र है। यह सूत्र ही आत्म-मुक्ति का राज मार्ग है।

आज साँझ को ही सही हम चेतना की इस गहराई में उतरें। शरीर के प्रति बाँस की पोली पोंगरी की तरह सहज हो जायें। शिथिल मन किन्तु सजग चेतना के साथ स्वयं के अंतरमौन को, अंतरशून्य को, अंतर-अस्तित्व को निहारें, आप अपने आपको दिव्य ऊर्जा से भरा हुआ पाएँगे, अपने आप में एक नये जीवन को प्रवेश होता हुआ देखेंगे। एक ऐसे जीवन को जिसे हम मुक्ति का जीवन कहते हैं, बोधि-लाभ और ब्रह्म-विहार कहते हैं।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुक्ति का पाठ : मृत्यु-बोध

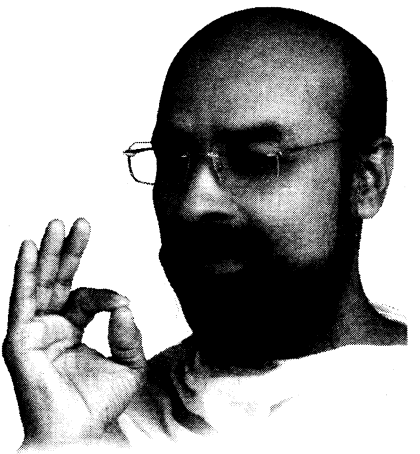

हमारी साधना मुक्ति की ओर बढ़ती तीर्थयात्रा है। मनुष्य की मंज़िल मृत्यु नहीं, वरन मुक्ति है। मृत्यु जीवन की समाप्ति है, जबकि मुक्ति मर्त्य में अमृत की, मृण्मय में चिन्मय की खोज है। मुक्ति तो मृत्यु भी तुम्हें देती है, पर मृत्यु जिससे मुक्ति देती है वह देह भर होती है। मृत्यु तुम्हें देह से मुक्ति दे सकती है, लेकिन तुम्हें मुक्त नहीं कर सकती। मुक्ति न तो देह को मारती है, न तुम्हें। मुक्ति का अर्थ हुआ कि देह तो देह के रूप में ही रही। तुम देह में रहते हुए भी देह से अलग हो गये। मुक्ति हमारी मृत्यु नहीं है वरन हमसे रहने वाले जीवन-तत्त्व की उपलब्धि है।

जिसे आम भाषा में मृत्यु कहते हैं, उस मृत्यु से गुजर कर हमारी केवल मिट्टी ही पलीत होनी है। जीवन की राख ही होनी है। पर अगर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीते-जी हमें मृत्यु का बोध हो जाये, मृत्यु का अहसास हो जाये तो दुनिया की आधी आपाधापी ऐसे ही मिट जाये। आदमी की यह मुश्किल है कि उसे यह कभी दिखाई ही नहीं देता कि उसकी भी मृत्यु होनी है। किसी और को मरता देखकर अगर उसे यह किंचित् भी लग जाये कि उसे भी इसी दौर से गुजरना है तो वह न तो स्वार्थखोरी में उलझे, न हिंसा-प्रतिहिंसा में रस ले और न ही संग्रह-परिग्रह की साँठ-गाँठ बैठाये।

किसी युवक ने संत से पूछा, 'क्या आपको तृष्णा और वासना नहीं सताती?' संत ने कहा, 'नहीं।' पूछा, 'क्यों?' संत ने कहा, 'मैं तुम्हें इस बात का जवाब दूँ इससे पहले तू यह जान ले कि पाँच दिन बाद तेरी मृत्यु होने वाली है।' युवक चौंका अपनी मृत्यु की बात सुनकर। संत ने कहा, 'सवाल-ज़वाब तो छोड़। संसार की सरपच्ची बहुत हो गयी। मौत द्वार पर आयी खड़ी है। भगवान को भज और जो अपने कल्याण को चाहता है वह कर।'

युवक की स्थिति बड़ी विचित्र हो उठी थी। वह अपने घर गया और बड़े उत्कट भाव से भगवान की भक्ति में लीन हो गया। जब पाँच दिन गुजर गये तो उसने पाया कि संत उसके घर पर आये हुए हैं। संत ने उससे पूछा 'कहो वत्स, पिछले पाँच दिन कैसे बीते?' युवक ने कहा, 'जब मौत द्वार पर आयी हुई हो तो आदमी को सिवाय भगवान के और कुछ याद भी नहीं आता।' संत ने कहा, 'तुमने मुझसे पूछा था कि आपको तृष्णा और वासना क्यों नहीं सताती? जिसे सदा मृत्यु की पदचाप सुनायी देती हो, उसे भगवान की याद भी क्या आयेगी? उससे तृष्णा और वासना तो वैसे ही दूर रहती है जैसे मृत्यु से कोई आदमी दूर रहना चाहता है।'

मृत्यु का बोध हमें बिना साधना ही मुक्ति की रोशनी दिये रहता है। मृत्यु तो जीवन का शाश्वत नियम है। शाश्वत का अर्थ है जिसमें कोई उलटफेर नहीं किया जा सकता। मृत्यु तो हमारी जीवन-यात्रा का आखिरी पड़ाव है। उससे बचा भी नहीं जा सकता है। पर भगवान करे कि हम सबकी मृत्यु हो, उससे पहले मुक्ति हो जाये। हम राख हों, उससे पहले निर्वाण को प्राप्त हो जाएँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक सौदागर गंगा में स्नान करते हुए मन में कल्पनाओं के स्वप्न संजो रहा था। मेरे पास जो माल है मैं उसे बेचकर उससे चार गुना कमाऊँगा। चार गुने धन से माल खरीदकर आठ गुना कमाऊँगा। धन से धन बढ़ता जायेगा। मैं बहुत बड़ा अमीर बन जाऊँगा। अपने लिए सात-सात महल बनाऊँगा और सात-सात सुंदरियों से निकाह करूँगा। नदी किनारे खड़े एक संत ने युवक की मन:स्थिति को पढ़ा। संत ने कहा, 'भले मानुस तू यह सब तो तब करेगा जब सात दिन से ज़्यादा जी पायेगा।' सौदागर संत की बात सुनकर चकित हुआ। पूछा, 'क्या मतलब?' संत ने कहा, 'मैं सातवें दिन तो तुम्हारी मृत्यु देख रहा हूँ।' सौदागर संत की बात सुनकर बेहोश होकर गिर पड़ा। संत ने उसके चेहरे पर पानी के छींटे दिये। जैसे-तैसे वह होश में आया। उसका हृदय रो पड़ा। संत ने कहा, 'मित्र, जीवन की कभी मृत्यु नहीं होती। मृत्यु केवल हमारे सपनों को तोड़ सकती है। तुम अपने झूठे सपनों से स्वयं को बाहर लाओ और अपनी मन की शांति के साथ अपनी मुक्ति के इंतज़ाम में लग जाओ।'

संत ने उसको मुक्ति का पाठ पढ़ाया। उसे संबोधि अर्जित हुई। सातवें दिन मृत्यु अवश्य आई, पर उसकी मृत्यु हो उससे पहले उसका निर्वाण हो गया। उसकी देह गिर गयी, पर वह अरिहंत हो गया।

हमारी मृत्यु ऐसी मृत्यु हो कि वह निर्वाण का महामहोत्सव हो जाये। हमारे लिए मृत्यु पीड़ा या बेचैनी नहीं हो, वरन् काया का गिरना भर हो। मृत्यु का बोध इसलिए है ताकि हम मुक्ति का पाठ पढ़ सकें। मृत्यु के बोध का यह अर्थ नहीं कि हमें मृत्यु का भय हो। भय को कोई भी रास्ता हमें मुक्ति की ओर नहीं ले जा सकता है। भय मनुष्य के लिए आत्मघातक है। मुक्ति का मार्ग निर्भयता से प्राप्त होता है। मृत्यु के भय से मुक्त होकर ही व्यक्ति मुक्ति को जी सकता है।

मृत्यु से कैसा डर! मृत्यु तो काया की होनी है। हम थोड़े ही मर जायेंगे। जो आज जीवित है वह मृत्यु के दौर से गुजरने के बाद भी जीवित ही रहेगा। जिसे तुम किसी को मृत्यु के बाद मृत घोषित करोगे, वह तो आज भी मृत है। मृत्यु तो केवल मृत और जीवित के बीच रहने वाले संयोग को तोड़ देता है। दो तत्त्वों के बीच होने वाले संयोग का टूटना ही मृत्यु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। शरीर तो आज भी मृत है। जीवित तत्त्व के साहचर्य के कारण यह मरणधर्मा शरीर भी जीवित दिखाई देता है। जिनके पास आँखें नहीं हैं वे ही कहते हैं 'वह मर गया।' जिनके पास जीवन-दृष्टि हो उनके लिए मृत्यु केवल जीवन का परिवर्तन है। पुरानी काया का छूटना और नई काया का धारण करना है। जीवन-तत्त्व की मृत्यु नहीं हो सकती। जीवन तो एक बार नहीं सौ-सौ बार चिता पर जला दिया जाये तब भी वह तो अखण्ड, अच्छेद्य, अभेद्य रहेगा। उसे आग क्या जलायेगी? जो स्वयं आग को अस्तित्व देता है, पानी उसे क्या डूबा पायेगा जिसके कारण पानी स्वयं अस्तित्व पाता है गीता कहती है:

नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥

जीवन के प्रति तो वह दृष्टि चाहिये जो जीवित और मृत दोनों को साफ-साफ देख और समझ सके। मृत्यु क्या है, मृत्यु किसकी होनी है, यह बात हमारे ध्यान में होनी चाहिये। मृत्यु से केवल काया गिर पायेगी। जीवन तत्त्व के लिए तो काया बिल्कुल ऐसे ही है जैसे सर्प के लिए कैंचुली हुआ करती है। आखिर फल के पक जाने से उसे पेड़ से उतरना ही होगा। पत्ते के पीले हो जाने से उसे झड़ना ही होगा। मृत्यु तो ऐसे है जैसे हवा का झोंका आये और पेड़ पर अटका पीला पत्ता उस हवा के झोंके के साथ हवा में तैरता हुआ ज़मीन पर आ गिरे।

जो मुक्ति को जीता है उसके लिए तो काया कल ही क्यों, आज ही गिर जाये। जिसके पास जीवन की तैयारी नहीं होती वे ही सोचते हैं कि इस बूढ़ी काया को और घसीटा जाये। काया से काया को और जिया जाये। अब इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है कि काया शुक्रवार को गिरे या मंगलवार को, सूरज पूर्णिमा को अस्त हो या अमावस को?

यूँ तो आदमी किसी के मर जाने के बाद उसकी फोटो पर फूलमालाएँ चढ़ाता है, उसकी स्मृति में दान और प्रार्थनाएँ करता है। पर स्वयं वह इस बात को अहसास क्यों नहीं करता कि आने वाले कल में उसका शरीर भी गिर जायेगा। जिस शरीर की तृष्णा और वितृष्णा के पीछे वह अपना जीवन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होम रहा है, पीछे केवल शरीर की तस्वीर ही बचेगी।

सुनने वालो सुनो ध्यान से
सारे आज गरीब-अमीर।
सबकी ही तस्वीर रहेगी
नहीं रहेगा सदा शरीर॥

किसी की मृत्यु हमारे शरीर के लिए एक अवसर है अपने जीवन और अपनी मृत्यु को समझने के लिए। मृत्यु तो आखिर सबकी ही होनी है। हर कोई मौत की कगार पर खड़ा है। मृत्यु कोई आकस्मिक घटित नहीं होती। वह तो पल-पल घटित हो रही है। शिवलिंग पर रखा कलश बूँद-बूँद रिस रहा है। अगर अपनी इस साँस-धारा पर ध्यान दो तो साफ-साफ लगेगा कि आती हुई साँस जीवन है, जाती हुई साँस मृत्यु है। साँस लेना जीवन है, साँस छोड़ना मृत्यु है। जब बच्चा जन्म लेता है तो वह सबसे पहले साँस लेता है। जब आदमी मरता है, तो आखिरी बार साँस छोड़ता है। साँस के लेने और छोड़ने में ही जीवन और मृत्यु के संगीत का लय है। मृत्यु अंतिम साँस का लेना नहीं है, वरन् साँस का छूटना है। मृत्यु यानी साँस का वह आखिरी बार छूटना जिसके बाद साँस फिर ली न जा सके। जिसकी श्वासों में मधुरता है, एक संतुलन और लयात्मकता है वह न केवल अपने जीवन और मृत्यु के प्रति सजग है, वरन् उसके जीवन में माधुर्य और आनन्द की सुवास भी है, प्रकाश भी है।

जहाँ प्रकाश है वहाँ अंधकार प्रवेश भी कैसे कर पायेगा? जिस घर में अंधकार और सूनापन है चोर वहीं तो घुसेगा। हम जीवन के प्रति आनंदित रहें, जीवन हमें आनंदित रखेगा। हम शाश्वत जीवन का बोध रखें जीवन हमें शाश्वत बोधि-लाभ दिये रखेगा।

बुद्ध ने तो कहा था, 'तुम मेरे पास संन्यास लेने से पहले तीन महीने श्मशान में ध्यान कर आओ। जलती हुई चिता का ध्यान कर आओ, ताकि तुम्हें देह का आखिरी रूप समझ में आ जाये, आखिर मरणधर्मा देह से कैसा मोह? देह को हकीकत में मरणधर्मा जान लो तो जीवन में आत्म-मुक्ति की क्रान्ति घटित हो जाये। यह सब कोई विचार या बुद्धि के तल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर न हो, वरन् बोध के तल पर हो। अगर यह सब बोध के तल पर है तो समझो तुम बुद्धत्व के करीब हो।

हम प्रतिदिन कायोत्सर्ग-विधि से गुजरें। कायोत्सर्ग मृत्यु-बोध की प्रक्रिया से गुजरने की कला है। देह-भाव और देह-राग को छोड़ते हुए विदेहानुभूति के लिए कायोत्सर्ग की प्रक्रिया अपने आप में एक विशिष्ट प्रयोग है। प्रक्रिया के गुजरने के लिए लेट कर सर्वप्रथम धीरे-धीरे श्वास लेते हुए पूरे शरीर में कसावट दें। श्वास को रोकते हुए संपूर्ण ऊर्जा के साथ समस्त मांस-पेशियों को नाभि की ओर दो क्षण के लिए खिंचाव दें और तत्क्षण श्वास छोड़ते हुए शरीर ढीला छोड़ दें। यह प्रक्रिया हम कुल तीन बार करें।

अब शरीर के प्रत्येक अंग को मानसिक रूप से देखते हुए एक-एक अंग को शिथिल होने का सुझाव दें। शरीर को भीतर-ही-भीतर सविस्तार देखें और हर अंग को शिथिल सुषुप्त हो जाने दें। हमारे पास आत्म-सजगता की ज्योति पूरी तरह बरकरार रहे, हम शरीर के तादात्म्य को तोड़ें और निर्भार हुए ऐसा अनुभव करें।

कायोत्सर्ग-विधि के दूसरे चरण में हम ऐसी कल्पना करें मानो हम ज़मीन पर नहीं वरन किसी चिता पर सोये हैं। हम अपनी अन्तर-सजगता की जलती लौ से उस चिता को आग लगा दें। चिता जलेगी। चिता के साथ हम काया को भी जलता हुए देखें। अपनी चेतना को काया से बाहर लाकर उस सारी स्थिति को देखें। चिता जब बुझने लगे, हम पुनः शरीर में लौट आयें और अपने शरीर में रहे हुए अस्तित्व से एकाकार हो जाएँ जब सहज स्थिति आये, खड़े हो जाएँ। हम पायेंगे कि हमारा एक नया जन्म हुआ है। हमारी चेतना पूर्वापेक्षा अधिक निर्मल, शांत और ऊर्जस्वित हुई है। हम स्वयं में मुक्ति का प्रकाश पाएँगे। मुक्ति का आनंद निहारेंगे। हमें पूर्ण स्वस्थता का अनुभव होगा। हमें अपना जीवन किसी तीर्थ-यात्रा की तरह मंगलदायी, स्वस्तिकर और सच्चिदानन्द-दशा का अनूठा सुख प्रदान करेगा।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान और कर्म का समन्वय

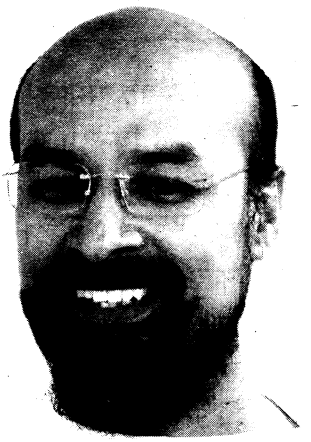

ध्यान और कर्म दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। ध्यानपूर्वक कर्म को संपादित करना ही ध्यान की उपयोगिता और कर्म की पूर्णता है। ध्यान का उपयोग हम यह न समझें कि यह किन्हीं गुफावासी संन्यासी भर के लिए होगा। ध्यान उस हर आदमी के लिए है जो अपने हर कार्य को उसकी सफलता के साथ संपन्न करना चाहता है। कर्म मनुष्य की अनिवार्य प्रवृत्ति है। भगवान कृष्ण ने गीता में मनुष्य को कर्मयोग की प्रेरणा दी है। गीता की रचना से पूर्व भगवान ऋषभदेव ने मनुष्य को कृषि-क्षेत्र में सन्नद्ध रहने के लिए प्रेरित किया है। कर्म का अर्थ है कार्य, कर्म का अर्थ है प्रवृत्ति, कर्म का अर्थ है पुरुषार्थ। कर्म से ही कर्मठता का जन्म होता है। जो कर्म में सन्नद्ध नहीं है वह कर्मयोगी नहीं है। वह निष्कर्मी निठल्ला है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमें अपने जीवन की समस्त सुविधाओं और व्यवस्थाओं के लिए आत्माश्रित रहना चाहिए, न कि पराश्रित। मेहनत की रूखी रोटी भी अच्छी होती है बनिस्पत दान की चिकनी रोटी के। औरों के द्वारा प्रदत्त रोटी हमें अहसान के बोझ से दबा देती है। अपनी कमाई से ही अपने स्वाभिमान और गौरव की रक्षा हो सकती है। किसी के संत होने का यह अर्थ तो नहीं हुआ कि वह समाज के आश्रित जीवन जीये। संत होने का अर्थ यह थोड़े ही होता है कि हम दान की रोटी खाएँ। व्यक्ति संन्यास लेता है साधना के लिए। साधना का अर्थ यह नहीं है कि तुम कार्य न करो। साधना का संबन्ध हमारी आत्मा से है। उसमें जीवन की व्यवस्थाएँ बाधक कहाँ बनती हैं। साधना कर्म-विमुख कदापि नहीं होनी चाहिएँ। हम अब तक आध्यात्मिक साधना के लिए ही 'ध्यान' का उपयोग करते रहे हैं। मैं ध्यान को जीवन-सापेक्ष रूप देना चाहता हूँ। मैं अपने हर कार्य को, हर गतिविधि को ध्यानपूर्वक करता हूँ। मेरा यह 'करना' कर्म-योग है और ध्यानपूर्वक करना साधना है।

ध्यान को जीने का अर्थ यह थोड़े ही है कि आप समाज में नहीं जाएँगे, समाज की गतिविधियों में शरीक नहीं होंगे, कि व्यवसाय या उत्पादन नहीं करेंगे। ध्यान तो हम इसलिये करते हैं ताकि हम उत्पादन भी ध्यानपूर्वक कर सकें। एक आम आदमी कोई तरह का उत्पादन करे तो दोनों की शैली और परिणाम में फ़र्क़ होगा। ध्यानी व्यक्ति उन लोगों के जीवन-मूल्यों का ध्यान रखेगा जो उसकी उत्पादकता का उपयोग करेंगे। लोग कहेंगे किसी तरह का उत्पादन करो तो आरंभ-सभारंभ(हिंसा) होता है, स्थूल और सूक्ष्म की हिंसा होती है। उनकी बात में दम तो है मगर इससे बड़े दम की बात यह है कि तुम अगर ध्यान करते हो और यदि ध्यानपूर्वक किसी तरह का उत्पादन करो तो उल्टे हिंसा कम होगी। उत्पादन तुम करो या न करो; तुम न करोगे तो कोई और करेगा। उत्पादन में जो हिंसा होती है वह तो होगी। तुम करोगे तो कम होगी।

इसे यूँ समझें। आपके घर में आपकी नौकरानी झाड़ू लगाती है वहीं अगर घर की मालकिन झाड़ू लगाती है तो झाड़ू निकालने के प्रति दोनों के विवेक में तुम फ़र्क़ पाओगे। आप अगर ध्यान करते हैं और झाड़ू निकालते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है तो आपके विवेक में और उनके विवेक में भी बड़ा फर्क होगा। एक आदमी झाड़ू निकालते समय खिड़की और आँगन में चलती चींटियों पर ध्यान नहीं देता और फटकारे मारते हुये झाड़ू निकाल लेता है। स्वाभाविक है कि चींटियों की हिंसा का दोष तो लगेगा ही। दूसरा आदमी ध्यानपूर्वक झाड़ू लगा रहा है, तो वह चींटियों को बचाते हुए झाड़ू लगाएगा। उसे चींटी में भी आत्मवत् स्वरूप दिखाई देगा। झाड़ू तो लगेगा ही किन्तु ध्यानपूर्वक झाड़ू लगाना अहिंसा को चरितार्थ करना है। उत्पादन ऐसा होना चाहिए जिसमें जीवदया का निर्वाह हुआ हो और उत्पादन करने वालों का शोषण भी न हुआ हो। कितना अच्छा हो यदि हम कर्मयोग को भी ध्यान-योग बना लें। हमारा कर्म भी हमारी उपासना का अंग हो जाये। हमारा काम भगवान को निवेदित की जाने वाली प्रार्थना बन जाये।

संत कबीर जन्म से जुलाहा थे, कपड़े बुनने का काम करते थे। कपड़ा बुनते वक्त हर धागे में उनकी ओर से राम-राम का स्मरण होता। ज़रा कल्पना करो कि जिस चादर के हर ताने-बाने में राम-नाम समाया हो उस चादर का रंग कितना अनेरा होगा। उस चादर में कितना निरालापन होगा, कितनी उजास होगी। कबीर कहते हैं :

चदरिया झीनी रे झीनी
राम नाम रस भीनी
चदरिया झीनी रे झीनी।

चादर बुनने में भी राम का रस! इसे कहते हैं सम्यक् उत्पादन-प्रवृत्ति फिर भी अनासक्ति। कबीर के लिए चादर बुनना ही नहीं, वरन् खाना-पीना भी भगवान को भोग चढ़ाने के समान रहा। उठना, बैठना, चलना-फिरना परमात्मा के मन्दिर की परिक्रमा लगाना रहा। कितने रस भरे शब्दों में कबीर ने गाया है :

खाऊं-पिऊं सो सेवा
उठूं बैठूं सो परिक्रमा।

कबीर ने तो ग्राहक में भी राम को निहारा है। जरा कल्पना करें कि उस व्यक्ति का व्यवसाय, जीविकोपार्जन कितना श्रेष्ठ होगा जो ग्राहक में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी भगवान को निहारता है, व्यवसाय को भी भगवान की भक्ति मानता है। ऐसे व्यक्ति का जीवन चौबीसों घण्टे धर्म-ध्यान में बीतता है। उसका जीना वास्तव में जीवन की तीर्थ-यात्रा कहलायेगी।

संत रैदास जो मोचीगिरी का काम कर लिया करते, जूतों की सिलाई, पालिश का, और हर धागे की पिरोई में 'प्रभुजी! तुम चन्दन हम पानी' जैसे गीतों का संगान होता। संत गोरा अवश्य ही कुंभकार था। घड़ों को बनाने का काम करता, लेकिन घड़े बनाते-बनाते उसने स्वयं को बना लिया। अपनी आत्मा को प्रगट कर लिया था।

कर्मयोग न तो ध्यान-विमुख प्रवृत्ति है और न ही ध्यान-योग कर्म-विमुख प्रवृत्ति है। हमें ध्यान और कर्म दोनों को परस्पर सम्बद्ध कर लेना चाहिये। हमारे जीवन के लिए आखिर दोनों आवश्यक हैं। आप सुबह योगासन करते हैं, अच्छी बात है। व्यायाम अवश्य करना चाहिये, पर अगर आपको लगता हो कि आपके घर में सामान बिखरा पड़ा है तो आसन करने से पहले उन बिखरे हुए सामानों को व्यवस्थित करना ज्यादा आवश्यक है। यह भी एक प्रकार का व्यायाम ही है। इससे दो फायदे - व्यायाम का व्यायाम हो गया और घर व्यवस्थित हो गया। हम ध्यानयोग करते हों तो इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि हम समाज-विमुख हो गये, या हमने मेहनत करनी छोड़ दी। नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिये। हमें समाज पर बोझ नहीं होना चाहिये। घर वालों को ताना देने का यह अवसर नहीं देना चाहिये कि आप आसन लगाकर बैठ गये और घर में इतना काम पड़ा हुआ है। जीवन को हमें एक व्यवस्था देनी चाहिये। ध्यान उसी व्यवस्था का एक अंग है।

संत विनोबा भावे ने भूदान-यज्ञ चलाया था। देशहित में उनके श्रम और सेवाओं को सदा याद किया जाता रहेगा। संसार को आज ऐसे ही संतों की आवश्यकता है जो अपने आध्यात्मिक मूल्यों को समाज के सुधार और उद्धार में उपयोग कर सकें। आप जो भी कुछ करें अतंस् चेतना में सदा यह सजगता रहनी चाहिये कि आप अपने इस अमुक कर्म को करते हुए ध्यान ही कर रहे हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिन भर श्रम करें, जीवन-व्यवस्था के साधन संपादित करें और साँझ पड़ने पर ध्यान में हो लें, अंतर्मन की गहराई में डूब जायें। जीवन और समाज के लिए बाहर प्रवृत्ति हो और कर्म पूरा होने पर पुनः अन्तःकरण में चले जायें और अंतर्मन की गहराइ में डूब जायें। वास्तव में समाज को हमें इस तरह जीना चाहिये कि स्व-सत्ता के साथ संबंध बना रहे। हम अपनी अंतर-आत्मा को भूल न जायें। एक ओर से प्रवृत्ति हो रही है और दूसरी और से निवृत्ति। प्रवृत्ति का संतुलन बिठाना ही जीवन की साधना है, तपस्या है।

बेहतर होगा कि हम अपने कार्य को भी अपनी ओर से हो रही सेवा समझें। अगर हमने किसी प्राणी की सेवा की, किसी मनुष्य के काम आये तो यह ही मानें कि हम से परमेश्वर की सेवा हुई। प्राणी मात्र की सेवा को परमेश्वर की सेवा मानने वालों में से ही मदर टेरेसा और क्रिस्टल रोजर्स जैसे लोगों का जन्म होता है। मानवता ऐसे लोगों से ऋणी रहती है, गौरवान्वित होती है।

सार बात इतनी-सी है कि हम हर कार्य को तन्मयता से पूरा करें। ध्यानपूर्वक पूरा करें। जितनी आवश्यकता चेतना के ध्यान की है, उतनी ही इस बात की है कि हमारे सभी कार्य ध्यान-रूप होने चाहिए।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान और विश्व का भविष्य

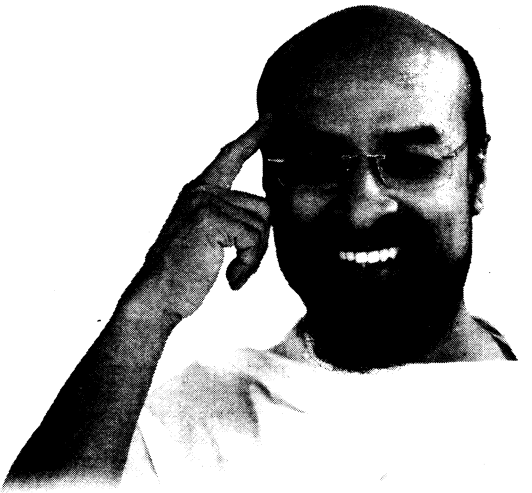

हम अपने अंतर-जीवन में तीन बातों का अनुभव करते हैं - मन, प्राण और बुद्धि। प्राण प्राणियों की भूमिका है, मन मनुष्य की और बुद्धि विज्ञान की भूमिका है। प्राणियों का संबंध प्राण होता है, किन्तु मनुष्य प्राणी के अतिरिक्त अपने में मन और बुद्धि का स्वामित्व भी रखता है। मन और बुद्धि मनुष्य की महानतम विशेषताओं में से एक है। दोनों का संबंध हमारे मस्तिष्क से है। मस्तिष्क प्रकृति का सर्वोत्कृष्ट आविष्कार है।

मनुष्य मन के अनुसार चलता है। मन मनुष्य का प्रेरक तत्त्व है। मन की जैसी प्रेरणा होती है, आदमी वैसा ही करता है। इंद्रियाँ और देह तो वही करते हैं जो उन्हें उनके मालिक की ओर से आदेश मिलते हैं। मन मनुष्य का मालिक बना हुआ है। मन को शक्ति मिलती है चित्त से, साथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही बाहर के निमित्त से। मन चलता रहता है, बहता रहता है। मन का वश चले तो वह सारी दुनिया को हड़प ले। आदमी का जोर चलता नहीं, वरना हर आदमी का मन चाहता है कि वह विश्व-विजेता सिकन्दर बने। सारी दुनिया पर उसका ही स्वामित्व और शासन हो।

धरती पर अरबों लोग रहते हैं। अगर हर आदमी अपने मन की पूरी करना चाहे तो एक दुनिया नहीं, अरबों दुनिया चाहिये। मनुष्य का मन इतना बेलगाम, बेहिसाब है। मन में स्वार्थ, हिंसा और व्यभिचार के इतने पुलिंदे भरे पड़े हुए हैं कि अगर मनुष्य ने अपने मन का समाधान न निकाला तो दुनिया में आज ऐसे संहारक अस्त्र-शस्त्र ईजाद हो चुके हैं कि वे दुनिया को एक बार नहीं, सौ-सौ बार नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। मनुष्य ने प्रलय की अतिक्षमता अर्जित कर ली है। हमारे नये निर्माण हमें भावी विध्वंस के संकेत देते हैं। मनुष्य धरती के लिए वरदान साबित हो, इसके लिए हमें मन से ऊपर उठना होगा। मन पर अंकुश लगाना होगा और यह अंकुश लगाने का काम बुद्धि के द्वारा होगा। गीता में बुद्धि-योग को राज-योग की संज्ञा दी गई है। बुद्धि से जीना, विवेक से जीना, बोध और ज्ञानपूर्वक जीना समझदार लोगों का काम है।

मनुष्य का अब केवल अपने परिवार के भविष्य के लिए चिंतित होने से कुछ नहीं होगा। हमें पूरी पृथ्वी पर ध्यान देना होगा। अब युग व्यक्तिवादिता का नहीं रहा है। सामूहिकता का आ गया है। सामूहिक उत्पादन हो रहे हैं और सामूहिक ही विध्वंस हो रहे हैं। हमें अब समग्रता से सोचना होगा। अपनी और अपने परिवार की सम्पूर्ण भावी सुरक्षा के लिए हमें सारे जगत की भलाई के लिए ध्यान केन्द्रित करना होगा। अब निजी सोच से, संकुचितता से काम नहीं चलेगा। आखिर हर देश ने अपनी ओर से स्वर्ग के सृजन का और पृथ्वी के विस्फोट और प्रलय का इंतज़ाम कर लिया है। अब आवश्यकता मन पर बुद्धि के अंकुश की है। अब दुनिया इतना विकास कर चुकी है कि मनोशास्त्र कोई अर्थ नहीं रख पा रहे हैं। अब हमें उच्च मानसिक ऊर्जा एवं क्षमता की खोज़ करनी होगी। मनुष्य को अपने साधारण विचार और साधारण मन से ऊपर उठकर असाधारण विचार और असाधारण मन की तलाश करनी होगी। जितनी आवश्यकता आज विज्ञान, कला और सुख-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधनों की है उससे कहीं ज्यादा ध्यानमार्ग की है, ताकि मनुष्य अपनी उच्च मानसिक क्षमताओं को प्रगट कर सके। साधारण का विसर्जन करके असाधारण को उपलब्ध हो सके।

जीव की भूमिका पर हम बहुत जी लिये। प्राणियों की प्राण-भूमिका से सदी-दर-सदी गुजरते आये। अब जीव की भूमिका नहीं चलेगी। हमें शिव की भूमिका पर कदम रखना होगा। धरती पर उच्च ऊर्जाओं का विकास हो चुका है। उच्च शक्तियाँ काम कर रही हैं। हमें अपनी उच्च ऊर्जा और शक्ति को जगाना है क्योंकि उसके बिना अब काम नहीं चलने वाला है। आज तो पूरे पृथ्वी-ग्रह का संचालन अंतरिक्ष स्थित उपग्रहों से होने लग गया है। अब दुनिया में लड़ाई आमने-सामने की नहीं रही, प्रक्षेपास्त्रों की हो गई है। उपग्रहों से जिस तरह हम जुड़ते चले जा रहे हैं उससे यह संभावना नज़र आ रही है कि आने वाले समय में हम और हमारी धरती उपग्रहों पर आधारित हो उनकी कृपा पर अवलंबित हो जायेगी।

आज विज्ञान को बेहिसाब विस्तार हो गया है। अत: केवल मनुष्य की शक्ति से काम नहीं चलेगा। मनुष्य को अपनी उच्च शक्तियों की ओर बढ़ना होगा। हम अपने साधारण मन से ऊपर उठकर ही असाधारण अतिमनस् तत्त्व की ओर बढ़ पाएँगे, जिसका साहचर्य बुद्धि के साथ है। यह अपनी उच्च चेतना को समग्र अस्तित्व से जोड़ना होगा तभी हम विश्व-व्यापी समाधान प्राप्त कर सकेंगे। समय निरन्तर करवटें बदल रहा है। युग का हर दिन नया रूप और नयी खोजें लेकर आ रहा है। फिर हममें ही अकर्मण्यता क्यों?

हमारा शरीर हमें प्रकृति की सौगात है। शरीर के इस महामन्दिर में, महान् प्रयोगशाला में कई अद्‌भुत अनूठी आश्चर्यजनक शक्तियाँ, ऊर्जाएँ और क्षमताएँ समाविष्ट हैं। हमें उन ऊर्जाओं से अपना संबन्ध जोड़ना होगा, प्रयास करना होगा, जीवन के साथ नया प्रयोग करना होगा। जगत के कायाकल्प के लिए जीवन को नये रूप और नये आयाम देने होंगे। जगत् में विज्ञान का जितना विस्तार हुआ है वह सब मनुष्य की ही देन है। हमें तो वास्तव में अब वे नये क्षितिज तलाशने होंगे जो विज्ञान से भी ऊपर के हों, विज्ञान का भी नियंता हो। हमारी मनीषा की दूरदर्शिता इस बात में है कि हमारा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चिंतन केवल सामाजिक, राष्ट्रीय अथवा अंतरराष्ट्रीय धरातलों तक को छूता हुआ न हो वरन् हम इतने उच्च चिंतन के स्वामी बनें कि हमारा चिंतन अंतरग्लोबीय हो जाए, समग्र ब्रह्माण्ड से जुड़ जाए। एक ग्रह से ही नहीं, और ग्रहों से जुड़ जाए। हमारी और हमारी भावी पीढ़ी की सुरक्षा समग्र की सुरक्षा पर ही निर्भर है। हम जरा अपनी अंतरदृष्टि को खोलें और फिर जगत को निहारें तो स्वतः स्पष्ट हो जाएगा कि हमें कितना विराट् होना होगा, कितना ऊँचा उठना होगा।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान : विधि और विज्ञान

ध्यान योग वास्तव में उन लोगों के द्वारा स्थापित मार्ग है, जिन्होंने इसके द्वारा बुद्धत्व और जिनत्व के फूल स्वयं में सुवासित होते पाये! महावीर और बुद्ध ने जो कुछ पाया, वह ध्यानयोग से ही पाया। महावीर की अहिंसा और बुद्ध की करुणा उनके ध्यानयोग की निष्पत्तियाँ थीं! महावीर का तो मूल मार्ग ही ध्यान है। वे बारह वर्ष तक मौन एवं एकान्त में रहे। उन्होंने लगातार आत्म-अनुसंधान किया। स्वयं का अनुसंधान ही ध्यानयोग है। उन्होंने ध्यानावस्था में कैवल्य-बोध का दिव्य प्रकाश उपलब्ध किया। महावीर के जितने भी मंदिर हैं, जहाँ पूजा-पाठ चलता है, आश्चर्य है, वहाँ महावीर की प्रतिमा ध्यानावस्थित वीतराग की है। महावीर जिन कहलाते हैं। जिन यानी जीतने वाला। जो अपने-आपको जीते, वह जिन। ध्यान विजय का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मार्ग है; इन्द्रिय-विजय, कषाय-कर्म-विजय का मार्ग है।

अध्यात्म के अमृत बीजों का पल्लवन ध्यानयोग से होता है। हम चाहे महापुरुषों की पूजा-स्तुति करें या नाम-स्मरण, बग़ैर ध्यान के इन्हें आत्मसात् और चरितार्थ नहीं किया जा सकता। ध्यान की समझ हमसे छूट जाने के कारण ही धर्म के अमृत मार्ग भी हमारे लिए महज झालर-झांझर, यशो-कीर्तन, प्रलोभन और प्रदर्शन के साधन बन गये। बोध दरकिनार हो गया, अधकचरी कट्टरता एवं रूढ़ता अनेक रूपों एवं पर्यायों में मानवता के पास रह गई। ज्योति महागुहा में ही रह गई, मनुष्य के हाथ में मशाल के नाम पर महज डंडे रह गये। यह वास्तव में मूल मार्ग का अवमूल्यन हुआ।

जो लोग महापथ की ओर बढ़ना चाहते हैं, उच्च मस्तिष्क-शक्ति को विकसित करना चाहते हैं, उन्हें संबोधिपूर्वक ध्यानयोग को जीने का निवेदन है, निमन्त्रण है। ऐसा करके वे अपने शरीर, मन और आत्मा के साथ न्याय कर सकेंगे।

आज का मनुष्य चाहे धनाढ्य हो, मध्यमवर्गीय अथवा अभावग्रस्त मन की कलुषितता एवं अशांति उसका सबसे बड़ा रोग है। वह बहुत कुछ पाकर भी आत्म-व्यथित है; वह अनजाने भय से संत्रस्त है, मानसिक विकृतियों से उद्विग्न है। वह सब कुछ पाकर भी और सब कुछ त्याग कर भी सुख और शांति का वह ऊर्ध्व रूप प्राप्त नहीं कर पा रहा है, जिसकी उसकी अन्तरात्मा को प्यास है। उसकी अन्तरात्मा की कसक और पीड़ा को कोई बुझा सके, दूर कर सके, ऐसे व्यक्तित्व का सान्निध्य पाने में उसे असफल होना पड़ रहा है। भगवान् करे ऐसे समस्त लोगों को ध्यान की, संबोधि की प्रेरणा दें, जिससे वह मुखातिब हो सके अपने आप से। उतर सके अपने आप में, अपने ही भीतर के बसंत-पतझड़ से घिरे उपवन में।

देखता हूँ लोग व्रत-तप खूब करते हैं। पर प्रश्न यह है कि क्या उनका व्रत-तप सार्थक हो पाता है? एकादशी के व्रत को द्वादशी की दादी बना लिया जाता है और उपवासों को भी कीर्तिमानों की स्पर्धा में जोड़ दिया जाता है। व्रत तो विरति से पूरा होता है। 'उत्तराध्ययन' में कहा है कि ध्यान तप का अंग है, पर कितना अच्छा हो मनुष्य मन की निर्मलता के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिए ध्याननिष्ठ हो जाए तो जीवन की हर गतिविधि तपोमय हो जाए। जीवन स्वयं तप बन जाये।

पूजा-प्रार्थना होनी चाहिये, किन्तु स्वार्थ की आपूर्ति के लिए नहीं भगवत्-स्वरूप के दिव्य गुणों की आराधना के लिए, दीप के अर्घ्य समर्पित किये जाएँ अपने अन्तस्-तमस् को मिटाने की भावना से। दान दिया जाये सहयोग और अपरिग्रह के आचरण के लिए, न कि नाम-प्रतिष्ठा और सम्मान पाने के लिए। उपवास का आचरण हो शरीर-शुद्धि और मनोनिग्रह के लिए. स्वाध्याय और ज्ञानार्जन किया जाये, पर पांडित्य, भाषणबाजी और वाद-विवाद के लिए नहीं, वरन् जीवन-विकास एवं बौद्धिक चेतना के विकास के लिए।

सम्भव है कोई मार्ग मनुष्य को भटका भी दे, उसके लिए निष्फल सिद्ध हो जाए, किन्तु ध्यान भटकाने वाला मार्ग नहीं है। आखिर, ध्यान में उतरकर हम अपने आप में ही तो उतर रहे हैं, अच्छी-बुरी जैसी भी हालत है, हम अपने-आप से ही तो परिचित हो रहे हैं। अपनी आन्तरिक स्थिति क्या है, इसका जायजा लेना न तो कतई अनैतिक, असामाजिक और अधार्मिक है और न ही अवैज्ञानिक और अबौद्धिक। अन्तर्मन की बंजर भूमि को उर्वर करने का प्रयास हर दृष्टि से हितकर और कल्याणकारी है। यह मृण्मय में चिन्मय की, मर्त्य में अमृत की खोज है।

मनुष्य का लक्ष्य जीवन और मुक्ति-सापेक्ष होना चाहिये। हम अपने जीवन-मूल्यों का सम्बन्ध कोरे परलोक से न जोड़ें। हम अतीत की पुनरावृत्ति होते हुए भी हमें वर्तमान-सापेक्ष होना चाहिये। मरणोपरान्त हमें क्या मिलेगा, हमारा क्या होगा, हम कहाँ जाएँगे, इसकी बजाय हम यह देखें हम आज क्या हैं, क्यों हैं, हमारे चित्त की शांति और निर्मलता के उपाय क्या हो सकते हैं, हम स्वयं को इस तथ्य पर केन्द्रित करें। हम कोरी ऊँची बातें करते फिरें और हमारे हृदय की संवेदनाएँ मृत हो जायें, मन का उल्लास संत्रस्त हो उठे, तो वे बातें हमारे किस काम की? उल्टे हम पर ही वे व्यंग्य बन जाएँगी। विस्तार और सुविधा के अंबार खड़े होते जाएँ, पर जीवन की गुणवत्ता घटती जाये, तो यह हमारे लिए अध:पतन से उबरने की प्रेरणा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमें परमात्मा का प्रसाद चाहिये, आत्मा की मुक्ति हमें अभीप्सित है, पर पहले हम काययोग और मनोयोग को तो समझें। अपने शरीर और मन के स्वरूप, लक्षण तथा स्वभाव को समझना आत्मज्ञान के प्राथमिक चरण हैं। हमें शरीर के जन्म, उसके विकास, परिवर्तन और शरीरगत समस्त स्वभावों को समझना ही चाहिये। हर विद्यार्थी को शरीर-विज्ञान का व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिये। हम अपनी संतान को चाहे जिस कक्षा या वर्ग की पढ़ाई करवाएँ, उसे मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं को भी पढ़ाया जाना चाहिये।

मनुष्य के लिए व्यावहारिक, सामाजिक और शैक्षणिक ज्ञान की भी आवश्यकता है। मन को न समझने और उसे समझाने की कला से अनभिज्ञ होने के कारण ही मनुष्य अपने आपसे कट रहा है। वह परास्त, अशांत और दिग्भ्रान्त है।

हमें अपने जीवन में विज्ञान, कला और ध्यान तीनों को आत्मसात् करना चाहिये। विज्ञान और जगत् के पदार्थगत ज्ञान के लिए, कला जीवन का सृजनात्मक आयाम देने के लिए और ध्यान जीवन की आन्तरिक शुद्धि और पुलक के लिए है। वस्तुतः चेतना का विज्ञान ही ध्यान है। मनुष्य की उच्च ऊर्जाकृत शक्ति के जागरण के लिए ध्यान वरदान साबित हो सकता है।

जनमानस में यह एक भ्रान्ति है कि ध्यान करने से देवी-देवताओं के दर्शन होते हैं और जब किसी को महीनों-वर्षों ध्यान करने के बावजूद ऐसी कोई अनुभूति नहीं होती, तो वे ध्यानमार्ग के आलोचक तक बन जाते हैं। ध्यान से देवी-देवताओं के नहीं वरन् भीतर बैठे देवता के दर्शन होते हैं। भीतर के देवता से मतलब है हमारे अपने ही अस्तित्व से, स्वयं में समाहित और निर्झरित आनन्द से, सत्य से, शून्य से। यह तो नहीं कहा जा सकता कि ध्यान करने से किसी देवता के दर्शन होते हैं; हाँ, ध्यान हमें देव जरूर बना देता है। जीवन में दिव्यत्व का संचार होना ही तो देव हो जाना है। ध्यान अन्तस् में रहने वाली शैतानियत की मृत्यु है, देवत्व की प्रेरणा और उसका आचरण है। ध्यान वह दीप है, जिसकी रोशनी में जीवन स्वर्गिक होता है, देवत्व में अधिष्ठित होता है। अस्तित्व की उच्च सत्ता का स्वतः हम पर सान्निध्य बनता है। यह मार्ग पूरी तरह जीवन-सापेक्ष है और इसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवन-सापेक्ष होना चाहिये।

प्रिय-अप्रिय संवेदनाओं के बावजूद तटस्थ रहना, स्व-पर की भेद-रेखाओं से विरत रहना, हीन-महान की भावनात्मक स्थितियों में स्थितप्रज्ञ रहना, सदा करुणाभिभूत एवं हर हाल में मस्त रहना ध्यान की सिखावन है। कर्त्तव्य-कर्मों को करते हुए भी कर्त्ता-भाव के अहं से मुक्त रहना, मम की बज़ाय सर्व के प्रति अमृत प्रेम से ओतप्रोत रहना ध्यान की परिस्थितियों में प्रमुख हैं। सकारात्मक सोच और आत्म-विश्वास जीवन को नया आयाम प्रदान करने के लिए महामन्त्र हैं।

ध्यान स्पष्टत: स्वयं को समझने और अपनी चेतना को तराशने का उपक्रम है। यह भीतर होने का अभ्यास है, अन्त:स्थित सत्ता के साथ अपना सम्बन्ध-योजन है। ध्यान-योग से हर मनुष्य को गुजरना चाहिये यह बात तो ठीक है, किन्तु दुनिया में ध्यान के नाम पर इतनी विधियाँ/प्रक्रियाएँ प्रचलित हैं कि व्यक्ति किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है कि वह कौन-सी विधि अपनाए।

सभी विधियाँ अच्छी हैं। मनुष्य को प्रयोगधर्मी होना चाहिए। जीवन के कायाकल्प के लिए बतौर प्रयोग के किसी भी विधि को आजमाया जा सकता है। विधियाँ चाहे कितनी भी क्यों न हों, हमारे साथ कौन-सी विधि अनुकूल होगी, इसका समाधान स्वयं हमें हमारे भीतर बैठा देवता दे देगा। जिससे हमारा चित्त परिष्कृत और चेतना परिपूर्ण हो, वही श्रेष्ठ पद्धति है।

ध्यान की सौ से ज्यादा विधियाँ-पद्धतियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं। विधि इतनी अर्थपूर्ण नहीं होती। अर्थपूर्ण होती है विधि के प्रति हमारी तन्मयता, अन्त:करण में उतरने और जीने की गहराई। मैं जो विधि सुझाता हूँ वह कहाँ से आती है, उसका मूल स्रोत किससे जुड़ा है, यह तो भीतर बैठा देवता जाने। वह सुझाता है, संबोधि उसकी है।

आज ध्यानयोग की सारे विश्व को जरूरत है। मनुष्य के पास मन की शांति के समाधान नहीं हैं। ध्यान इसके लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यदि हम धर्म को विश्व में प्रतिष्ठित और प्रचारित करना चाहते हैं, तो मैं कहूँगा हम ध्यान-योग को मील का पत्थर बनाएँ। मानसिक विकास के लिए स्वाध्याय, आत्मिक विकास के लिए ध्यान और हार्दिक विकास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिए सेवा को सम्बल बनाया जाए। विकास के ये तीन चरण सारे संसार में प्रतिष्ठित होने चाहिये। युग को ध्यानयोग की आवश्यकता है।

संसार में संत्रास और अपराध बढ़ रहे हैं। तनाव और टकराव में बेहिसाब बढ़ोतरी हुई है। हिंसा और आपाधापी जीवन और समाज के रथ को आगे बढ़ने से निरन्तर रोक रहे हैं। रिश्वत और अपराध जैसी बेईमानियाँ बेहद बढ़ी हैं। ऐसी स्थिति में यह जरूरी है कि मानव-समाज के चित्त को शुद्ध करने के लिए, मन-मानस को निर्मल-निष्कलुष करने के लिए ध्यानयोग की जो भूमिका हो सकती है, वह तमस् घिरे युग में प्रकाश की सुबह साबित होगी।

ध्यान सबके लिए है। सूरज और बादल की तरह यह सबको लाभान्वित करता है। ध्यान को जीने के लिए चाहिये एकाग्रता/तन्मयता। एकाग्रता स्वयं ही लक्ष्य-सूचक है। एक आगे हो, बाकी सब पीछे, यही एकाग्रता है। तुम्हारे हाथ में तुम रहो, फिर कोई चिंता नहीं। 'एकला चलो रे' सूत्र एकाग्रता से ही निष्पन्न हुआ है। 'जे एगं जाणई से सव्वं जाणइ' की बात इसी एकाग्रता का विस्तार और परिणाम है। 'एकहि साधै सब सधे' की साधुक्कड़ी भाषा भी इसी एकाग्रता और तन्मयता से ईजाद हुई है।

एकाग्र बनो यानी लक्ष्य और ध्येय के प्रति सजग रहो। लक्ष्य ध्यान में है तो ध्यान हमारे हाथ से छूट नहीं सकता। हमारी यह मुश्किल है कि हम ध्यान को तो महत्त्व देना चाहते हैं, किन्तु ध्येय को गौण कर बैठते हैं। हम चित्त-मन से ऊपर नहीं उठ पाते, उसकी उलटबाँसियों में ही उलझ जाते हैं। नतीज़ा यह निकलता है कि ध्यान कुछ दिन तो चलता है, फिर मन ऊब जाता है, तो ध्यान छूट जाता है। ध्यान करने वाला व्यक्ति अपनी पात्रता का निर्माण नहीं कर पाता, ध्येय के प्रति आत्मनिष्ठ नहीं रह पाता उससे पहले ही गुचलकी खा जाता है, फिसल जाता है।

हमारे सामने हमारा लक्ष्य और गंतव्य स्पष्ट होना चाहिए। हम तब तक मार्ग पर चलते रहें, जब तक हमारा लक्ष्य हमारे हाथ न लग जाए। यदि लक्ष्य के प्रति हम समर्पित और अभीप्सु नहीं होंगे तो ज्ञान-ध्यान का कोई मतलब ही नहीं है। बग़ैर मंजिल का मार्ग कैसा और बग़ैर ध्येय के ध्यान कैसा!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान मनुष्य का संबल है, जीवन का अमृत है, अन्तरमन की आत्यंतिक गहराई को उघाड़ने का मार्ग है। ध्यान तो मनुष्य के साथ रहता ही है। एकाग्रता भी रहती है, मगर यह एकाग्रता चिन्तन की बजाय चिन्ता में, विधेय की बजाय हीनता में और स्वीकार की बजाय विकार में रहती है।

महावीर ने ध्यान को अशुभ भी कहा है। यह एक बड़ी क्रान्ति की बात है। उन्होंने शुभ ध्यान पर बल दिया है और अशुभ, अशुचिपूर्ण ध्यान से परहेज रखने के प्रति सतर्क किया है। आर्त और रौद्र, ध्यान के तमस् रूप हैं। धर्म और शुक्ल, ध्यान के सात्विक रूप हैं। तन-मन की, जीवन-जगत् की अधोगामी प्रवृत्तियों में तन्मय और चिन्तनशील रहना ध्यान का अशुभ रूप है। ऊर्ध्वमुखी और सकारात्मक प्रवृत्तियों में एकनिष्ठ होना शुभ रूप है। मानसिक हिंसा, तनाव, चिंता और घुटन से घिरे रहना आर्त और रौद्र ध्यान हैं वहीं सर्व कल्याण की भावना से ओतप्रोत रहना, सृजनात्मक कार्य में विश्वास रखना धर्म-ध्यान है। प्रिय-अप्रिय, हित-अहित, सुख-दुख, हर तरह की संवेदनाओं एवं परिस्थितियों में सम रहकर वीतरागता एवं वीतद्वेषता के अतिशय रस में निमग्न रहना शुक्ल ध्यान है। यह ध्यान ज्योतिर्मय है, आनन्द रूप है, चैतन्य स्वरूप है। यही संबोधि, कैवल्य और निर्वाण का आधार है। हम अपने मन की, तन की, अनर्गलताओं को काटें, उनसे बचें, जीवन को प्रकाश की परिभाषा दें, प्रकाश का पथ दें, प्रकाशमय बनें।

हम अपने जीवन में ध्यान को जिएँ, ज्ञान की समझ की रोशनी प्रदीप्त करें। ध्यान के प्रति हम सजग और सहज हों। तमस् का कोहरा चाहे जितना सघन हो, आखिर एक-न-एक दिन तो वह छँटेगा ही, शिथिल होगा ही। नियति को अन्ततः आत्मा का साथ निभाना होगा। हम कर्मयोग से न कतराएँ। जीवन की आवश्यक व्यवस्थाओं एवं सामाजिक वात्सल्य के लिए अन्तर-गुहा से बाहर आएँ और काम समाप्त होते ही अन्तर की गहराई में डूब जाएँ, मूल स्रोत के साथ सम्बद्ध हो जाएँ।

हम ध्यानपूर्वक जिएं। अपनी अन्तरात्मा में आत्मविश्वास की प्रतिमा विराजमान करें और स्वयं के जीवन-मन्दिर के निर्माण के लिए त्याग और पुरुषार्थ करें। परिणाम कैसे आत्मसात् होगा, ध्यान कैसे गहरायेगा इस पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभी हमें और गहरे उतरना होगा। ध्यान पर ध्यान दें, ध्येय को आँखों में बसाएँ, अस्तित्व के, स्वयं के, आत्म-शक्ति के गहरे सत्य स्वतः प्रत्यक्ष होंगे। हम पर प्रेम, शांति, करुणा, आनन्द और मुक्ति की अहर्निश आठों याम रसधार झरेगी।

ध्यान के परिणाम सहज हैं। मनुष्य के मन में वृत्तियों के भँवर और विचार-विकल्पों के तूफान मँडराते रहते हैं। जब तक व्यक्ति इस भँवर-जाल और तूफान से बाहर नहीं निकल पाता है, वह शांति और आनन्द के धरातल पर विहार नहीं कर सकता। ध्यानयोग मन की खटपट को शान्त होने का अवसर प्रदान करता है। मन की शांति ही आगे के द्वारों को खोलती है। मस्तिष्क की उच्च शक्ति को जाग्रत और सक्रिय करती है। शान्त मन, प्रसन्न हृदय और प्रखर ज्ञान ध्यान के सहज-सरल परिणाम हैं।

हर मनुष्य के मन में प्रिय और अप्रिय की संवेदनाएँ, अपने और पराये का भेद तथा हीनता और महानता की ग्रन्थियाँ बनी रहती हैं। ध्यान प्रिय और अप्रिय, स्व और पर, हीन और महान् की भेद-रेखाओं को मिटाता है। वह मनुष्य को नेक और प्रामाणिक मनुष्य बनाता है, विवेक की ज्योति और सदाबहार शांति तथा आनन्द को बरकरार रखता है। समता-सामायिक उसके जीवन की पर्याय बन जाती है। आरोपित व्यक्ति की बजाय सहज व्यक्ति का जन्म होता है। परिस्थितियों से संतुलित समायोजन की कला का वह स्वामी होता है। संकीर्णताओं के दायरों से मुक्त होकर वह विराट् दृष्टि, सौम्य व्यवहार और जीवन-शुद्धि का संवाहक बनता है।

यदि ध्यान का गुर हाथ लग जाये, मूल बात समझ में आ जाये, तो मनुष्य जीवन के मानसरोवर में हंस-विहार करने लग जाये। जिसने भी अब तक ध्यान का एकनिष्ठ भाव से प्रयोग किया, ध्यान की गहराई में डूबा, वह कृतकृत्य हुआ, धन्य हुआ, आनन्द और अहोभाव से अभिभूत हुआ। उसके साक्षित्व में शिवत्व उतरा।

ध्यान-मार्ग पर आप आगे आयें; आपका स्वागत है। मन नहीं लगता है तो ध्यान लगाएँ। जिनका ध्यान सहज लगता है, वे विधि-सापेक्ष न रहें। विधि प्रवेश के लिए है, एकनिष्ठ बनने का प्रयोगभर है।

ध्यान बहुत सहज है। इसे हम 'कठिन' न बनाएँ। ध्यान को बहुत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहजता से लें। बस, खुद में उतरना है, खुद को निहारना है, खुद के खालिस नूर का आनन्द लेना है। खुद की मस्ती में मस्त रहना है।

घबराएँ नहीं, कुछ लोगों का ध्यान जल्दी सधता है, कुछ लोगों के अन्तराय और वृत्ति-संस्कार बड़े पथरीले होते हैं। वे मानो कोठरी-दर-कोठरी रोज सूरज को जन्म देते हैं, और उनका सूरज रोज यतीम हो जाता है। ऐसे सज्जन विचलित न हों, बस धैर्यपूर्वक इस मार्ग से गुजरते रहें। आखिर तो रास्ता पार होगा ही। भीतर उतरे बग़ैर भीतर की अंधियारी काराओं को काटा नहीं जा सकता, जीवन-सत्य से मुख़ातिब नहीं हुआ जा सकता, परमात्म-सत्ता से सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता।

ध्यान हम जब भी करना चाहें, जब भी मन हो, ध्यान में हो लें। सुबह उषाकाल में ध्यान की एक बैठक कर ही लेनी चाहिये। दिन में और रात को सोने से पहले भी ध्यान कर लें तो और अच्छा। ध्यान से पहले शारीरिक स्फूर्ति और नाड़ी-शुद्धि के लिए कुछ योग और प्राणायाम कर लेना उपयोगी रहेगा। स्नान तन-मन को ताजगी देता है, अतः हाथ-पैर-मुँह धोकर या नहाकर ध्यान करें।

शरीर स्वयं साधना-कक्ष है। स्वस्थ शरीर और प्रसन्न हृदय - ध्यान की श्रेष्ठ भूमिका है। ध्यान वहाँ करें, जहाँ बाहरी शोरगुल न हो। ध्यान एकान्त और सौम्य वातावरण में करें। ढीले, साफ-सफेद वस्त्र पहनें। नरम आसन बिछाएँ। बैठक वैसी हो, जिसमें आप आराम से दो-चार घड़ियाँ बैठ सकें। हाथ की हथेली को या तो घुटनों पर रखें या गोद में। सुखासन, सिद्धासन, वज्रासन - किसी भी आसन-मुद्रा में बैठ सकते हैं। रीढ़, गर्दन और सिर को सहज सीधा रखें। जो लोग कुर्सी पर बैठकर ध्यान करना चाहते हैं वे इतना ध्यान अवश्य रखें कि कुर्सी की पीठ इतनी ऊँची हो कि हमारे सिर को सहज सहारा दे सके।

ध्यान हमें भीतर की उच्च सत्ता तक पहुँचाता है। इसलिए ध्यान प्रारम्भ करने से पूर्व हम ध्यान-भावना को स्वयं में साकार होने दें और यह संकल्प करें कि मैं अपने साधारण विचारों से ऊपर उठकर अपनी उच्च सत्ता के साथ विचरण करूँगा। ध्यान-कक्ष को निर्मल करने एवं अन्तरमन को सचेष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने के लिए मनोयोगपूर्वक, प्रसन्न हृदय से ओंकार का पाँच-सात बार उद्घोष करें और ध्यान-विधि में उतर जाएँ।

ध्यान-विधि

पहला चरण-
श्वास-दर्शन : एकाग्रयोग

पहले 10 मिनट तक गहरे श्वास-प्रश्वास लें। तत्पश्चात् देह और इन्द्रिय-विषयों से स्वयं को निर्लिप्त कर, सहज तन्मयतापूर्वक श्वास को देखें। श्वास पर स्वयं को एकाग्र, सजग और केन्द्रित करें। श्वास के साक्षी बनें। भीतर-बाहर आ-जा रही प्रत्येक साँस के प्रति सजगता और होश ही ध्यान का प्रवेश-द्वार है। साँस की गति जितनी सहज, सौम्य और गहरी हो, उतना अच्छा। धैर्यपूर्वक श्वास में डूबते जाएँ।

(विशेष : श्वास-दर्शन में सजगता बाधित होती लगे, तो श्वास के साथ 'ॐ' या 'सोहम्' रूप बीज-मंत्र का स्मरण किया जा सकता है।)

दूसरा चरण-
चित्त-दर्शन : शान्तियोग

स्वयं को भुकुटि-मध्य स्थिर करें, अग्र मस्तिष्क में केन्द्रित करें अपने आप को तन-मन, जगत-परिजन से अलग देखें। मन को मौन, तन्मय और विलीन हो जाने दें। विचार-विकल्प उठने शुरू हों, तो उनसे अलग होकर उनके साक्षी बनें। वृत्ति-विकल्प के दृष्टा बने। चित्त की स्थिति को, लेश्याओं को पहचानें। मन को सजगतापूर्वक सुझाव दें- शांत.....शांत.....शांत..... मन शांत, विचार शांत। यह सुझाव एकाधिक बार दोहराया जा सकता है। सुझाव बहुत कोमलता से दें। और इस सुझाव के साथ शांत मन हो जाएँ, ध्यानमय हो जाएँ, स्थितप्रज्ञ हो जाएँ। शांत और एकाग्र मन ही ध्यान का सुन्दरतम क्षण है। इस चरण की सुन्दरतम उपलब्धि है।

स्वयं की सजगता और चेतना को भृकुटि-मध्य केन्द्रित करने से मन का तमस् शिथिल होता है, ज्योति-केन्द्र सक्रिय होता है, मेधा और प्रज्ञा प्रखर होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस दूसरे चरण में विकल्पवृत्ति की विपश्यना की जाती है, लेश्याओं का बोध प्राप्त किया जाता है, मन की शांति का अभ्यास किया जाता है। मन का मौन, मन से मुक्त होना ही दूसरे चरण की पूर्ति है।

तीसरा चरण-
हृदय-दर्शन : भावयोग

ध्यान के तीसरे चरण में, मनोमस्तिष्क में हुई अविचल स्थिति को हृदय में उतार लाएँ। मन और बुद्धि को हृदय के मानसरोवर में निमज्जित हो जाने दें। जैसे बूँद सागर में समा जाती है, ऐसे ही अपने अहं और चंचल मन को अन्तरहृदय में समा जाने दें।

हृदय-प्रवेश में स्वयं को स्थित करें और वहाँ हो रही ध्यान की गहराई में डूबे। हम हृदय में स्वयं को देखें और सहृदयता के आनन्द का सहजतया हो रहे रसास्वाद का आकंठ पान करें। हृदय में हुई स्थिति, मन की चंचलता को मौन करती है, मन की अनर्गलता को हटाकर, अन्तर्मन की माटी को उपजाऊ बनाती है। हृदय के ध्यान से हमारी सुषुप्त भाव-शक्ति का जागरण होता है और जीवन के रहस्यों को जानने का द्वार-दरवाजा खुलता है। अन्तरात्मा के आनन्द और अहोभाव का अमृत झरता है।

चौथा चरण-
सहस्रार-दर्शन : बोधियोग

हृदय की अवस्थिति और पुलक को ऊर्ध्व मस्तक में ले आएँ ऊर्जाकृत उच्च मस्तिष्क में, जिसे योग ने सहस्रार और ब्रह्मरन्ध्र कहा है। इस चरण में हम स्वयं को स्वस्थ-प्रसन्न, हृष्ट-पुष्ट, श्रेष्ठ मनुष्य और आत्मवान् मानें। दो-तीन लम्बी गहरी साँस लें और मस्तिष्क को उच्च ऊर्जा शक्ति से भर जाने दें। इस संकल्प-बोध के साथ कि मैं अपनी उच्च सत्ता और शक्ति के साथ विचरण करूँगा।

यह चरण स्वयं के अस्तित्व की मौन अनुभव-दशा है, आत्म-विश्वास का शिखरारोहण है। इस दौरान अन्तःआकाश में चैतन्य-स्वरूप का बोध साकार होता है। व्यक्ति विशिष्ट ज्ञान-मनीषा का स्वामी बनता है।

अन्तिम चरण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विदेह-दर्शन : परमात्मयोग

अन्तिम चरण में हम मुक्त अस्तित्व से तदाकार हो जाएँ। अतीन्द्रिय शक्ति से, पराशक्ति से, परमात्म-सत्ता से सम्बद्ध/एकलय हो जाएँ।

यह एकलयता हमें आत्मगत सम्पूर्ण शक्ति को उपलब्ध करवाती है, हम व्यक्तिगत चेतना में परमात्म-चेतना की अनुभूति करते हैं। यह विदेह और मुक्त स्थिति तब तक बनी रहे, जब तक सहज-स्थिति न लौट आये।

उक्त विधि में दिये गये पाँच चरणों में, प्रथम सप्ताह में पहला चरण दूसरे सप्ताह में पहला-दूसरा चरण, तीसरे सप्ताह में पहला-दूसरा-तीसरा चरण स्वीकार करें। चौथे सप्ताह में चौथे चरण को सम्मिलित करें। इस प्रकार पाँचवें सप्ताह में पहले चरण से पाँचवें चरण तक की सम्पूर्ण विधि आत्मसात् की जानी चाहिये। समय-सीमा बीस मिनट से प्रारंभ की जाये। धीरे-धीरे यह समय-सीमा एक घंटे तक बढ़ा ली जाये।

इस ध्यान-विधि से जहाँ हम स्वयं से साक्षात्कार करते हैं, स्वयं की शांति, संबोधि और आनन्द-दशा का अनुभव करते हैं, वहीं अतीन्द्रिय शक्ति से सम्बन्ध जोड़ते हैं। संबोधि-ध्यान की यह विधि हमारी बुद्धि को उज्ज्वल बनाती है, मन को शांति का सुकून देती है, हृदय को कोमलता प्रदान करती है, ऊर्जाकृत मस्तिष्क को उच्चतर बनाती है, आत्मा को परमात्म-चेतना की रसानुभूति करवाती है। इसे हम स्वयं के आध्यात्मिक उपचार की कुंजी समझें। यह अत्यन्त सरल और सहज ध्यान-विधि है। ध्यान की विधि को नाम चाहे जो दिया जाये, सारे नाम एक-दूसरे के पर्याय भर हैं। मूल बात एकनिष्ठ प्रयोग करने की है, गहराई में उतरने और डूबने की है, स्वयं की उच्च सत्ता तक पहुँचने की है।

हम अपनी उच्च सत्ता के सम्पर्क में रहें। हर कार्य, हर गतिविधि ध्यानपूर्वक आत्मविश्वास के साथ सम्पन्न करें। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी स्वयं के आत्मगौरव, आत्मविश्वास और मानसिक शांति को बरकरार रखना जीवन की आध्यात्मिक सफलता है।

यह है मार्ग ध्यान का, सार है ध्यान के विज्ञान का।

❑❑❑

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लागत से भी कम मूल्य पर

श्रेष्ठ साहित्य

ऐसे जिएँ : श्री चन्द्रप्रभ
जीने की शैली और कला को उजागर करती विश्व-प्रसिद्ध पुस्तक। स्वस्थ, प्रसन्न और मधुर जीवन की राह दिखाने वाली प्रकाश-किरण। पुस्तक महल से भी प्रकाशित।
पृष्ठ : 122, मूल्य 25/-

लक्ष्य बनाएँ, पुरुषार्थ जगाएँ : श्री चन्द्रप्रभ
जीवन में वही जीतेंगे जिनके भीतर जीतने का पूरा विश्वास है। सफलता के शिखर तक पहुँचाने वाली प्यारी पुस्तक। पुस्तक महल से भी प्रकाशित।
पृष्ठ : 104, मूल्य 25/-

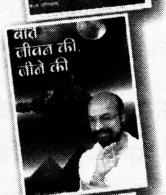

बातें जीवन की, जीने की : श्री चन्द्रप्रभ
युवा-पीढ़ी की समसामयिक समस्याओं पर अत्यंत तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शन।
एक लोकप्रिय पुस्तक।
पृष्ठ : 90, मूल्य 25/-

बेहतर जीवन के बेहतर समाधान : श्री चन्द्रप्रभ
जीवन की व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान देती एक लोकप्रिय पुस्तक।
पृष्ठ : 130, मूल्य 25/-

वाह ज़िंदगी ! : श्री चन्द्रप्रभ
सुखी और सफल जीवन जीने का रास्ता।
जन-जन में लोकप्रिय एक चर्चित पुस्तक।
पृष्ठ 120, मूल्य 25/-

क्या स्वाद है ज़िंदगी का : श्री ललितप्रभ
जीवन के विभिन्न सार्थक और सकारात्मक पहलुओं को आत्मसात कराने वाली लोकप्रिय पुस्तक।
पृष्ठ 146, मूल्य 25/-

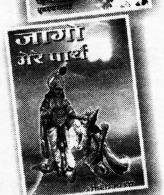

जागो मेरे पार्थ : श्री चन्द्रप्रभ
गीता की समय-सापेक्ष जीवन्त विवेचना।
भारतीय जीवन-दृष्टि को उजागर करता प्रसिद्ध ग्रन्थ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म में प्रवेश : श्री चन्द्रप्रभ
नित्य नये पंथों और उपासना-पद्धतियों के बीच
धर्म के स्वच्छ मौलिक स्वरूप का निर्देशन।
नई पीढ़ी के लोग अवश्य पढ़ें ।
पृष्ठ : 96, मूल्य 25/-

जागे सो महावीर : श्री चन्द्रप्रभ
भगवान महावीर के विशिष्ट सूत्रों पर अमृत प्रवचन ।
अन्तर्मन में अध्यात्म की रोशनी पहुँचाता प्रकाश-स्तम्भ।
ज्ञानवर्धन एवं मार्गदर्शन के लिए महावीर पर नई दृष्टि।
पृष्ठ 252, मूल्य 25/-

जीवन, जगत और अध्यात्म : श्री ललितप्रभ सागर
महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी के विशिष्ट प्रवचनों
का संग्रह। जीवन, जगत, अध्यात्म और मोक्ष पर
पावन मार्गदशन प्रदान करने वाली पुस्तक।
पृष्ठ 168, मूल्य 30/-

घर को कैसे स्वर्ग बनाएँ : श्री ललितप्रभ, श्री चन्द्रप्रभ
इस पुस्तक में है पूज्य श्री चन्द्रप्रभ का लोकप्रिय प्रवचन
'माँ की ममता हमें पुकारे' और पूज्य श्री ललितप्रभ का चर्चित
प्रवचन 'परिवार की ख़ुशहाली का राज़'। घर-घर में पठनीय।
पृष्ठ 168, मूल्य 10/-

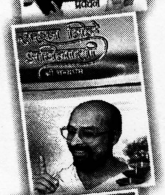

सहज मिले अविनाशी : श्री चन्द्रप्रभ
योग के कुछ महत्वपूर्ण सूत्रों के प्रसंग में दिए गए
बेहतरीन एवं अनमोल प्रवचन।
पृष्ठ : 100, मूल्य 25/-

आपकी सफलता आपके हाथ : श्री चन्द्रप्रभ
सफलता हर किसी को चाहिए, पर उसे
पाएँ कैसे, पढ़िये इस प्यारी पुस्तक को।
पृष्ठ 110, मूल्य 25/-

शांति, सिद्धि और मुक्ति पाने का सरल रास्ता : श्री चन्द्रप्रभ
अध्यात्म की सहज-सर्वोच्च स्थिति तक
पहुँचाने वाला एक अभिनव ग्रन्थ ।
पृष्ठ : 200, मूल्य 30/-

ध्यानयोग : विधि और वचन : ललितप्रभ सागर
ध्यान योग की वास्तविक समझ पाने के लिए विशेष उपयोगी।
साथ ही ध्यान-योग की विस्तृत विधि। पुस्तक महल दिल्ली
से भी प्रकाशित।
पृष्ठ : 148, मूल्य 30/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फिर कोई मुक्त हो : श्री चन्द्रप्रभ

अतीत के प्रेरक प्रसंगों पर दिए गए विशिष्ट प्रवचन। छोटे-बड़े सभी के लिए उपयोगी।

पृष्ठ 100, मूल्य 25/-

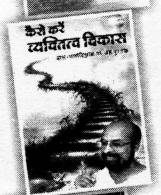

कैसे करें व्यक्तित्व-विकास :श्री चन्द्रप्रभ

जीवन और व्यक्तित्व-विकास पर बेहतरीन-बाल मनोवैज्ञानिक प्रकाशन।

पृष्ठ 100, मूल्य 25/-

संबोधि : श्री चन्द्रप्रभ

साधना के महत्वपूर्ण पहलुओं पर उद्‌बोधन। सर्वजन हिताय ; सर्वजन सुखाय।

पृष्ठ 100, मूल्य 25/-

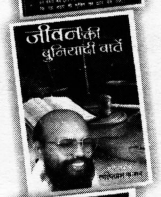

जीवन की बुनियादी बातें : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

व्यावहारिक और आध्यात्मिक जीवन का मार्गदर्शन। जीवन की आध्यात्मिक समझ देने वाली पुस्तक।

पृष्ठ 100, मूल्य 25/-

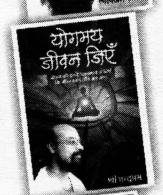

योगमय जीवन जीएँ : श्री चन्द्रप्रभ

सफल और सार्थक जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि । योग पर प्यारा प्रकाशन।

पृष्ठ 100, मूल्य 25/-

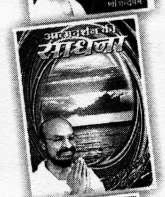

आत्मदर्शन की साधना : श्री चन्द्रप्रभ

आत्म-साधना के मार्ग को प्रशस्त करते विशिष्ट उद्‌बोधन। अष्टपाहुड़ के सूत्रों पर विश्लेषण।

पृष्ठ 112, मूल्य 25/-

महाजीवन की खोज : श्री चन्द्रप्रभ

अध्यात्म की बारीकियों का मार्गदर्शन करता सम्प्रदायातीत ग्रन्थ। आचार्य कुंदकुंद, योगीराज आनंदघन एवं श्री मद् राजचन्द्र के सूत्रों एवं पदों पर प्रवचन।

पृष्ठ : 176, मूल्य 30/-

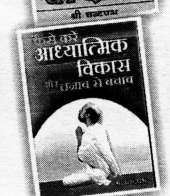

कैसे करें आध्यात्मिक विकास और तनाव से बचाव : श्री चन्द्रप्रभ

शरीर और मन के रोगों से छुटकारा दिलाते हुए स्वास्थ्य, शांति और मुक्ति का आनंद प्रदान करने वाला बेहतरीन मार्गदर्शन।

पृष्ठ 120, मूल्य 25/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

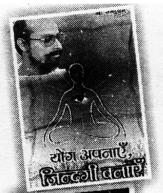

योग अपनाएँ, ज़िंदगी बनाएँ : श्री चन्द्रप्रभ

ध्यान-योग में प्रवेश पाने के लिए पूँजी के रूप में सफल मार्गदर्शन। एक चर्चित पुस्तक।

पृष्ठ 100, मूल्य 25/-

प्रेम की झील में ध्यान के फूल : श्री चन्द्रप्रभ

प्रेम, विश्वास और ध्यान की आभा प्रदान करने वाली प्यारी पुस्तक ।

पृष्ठ 96, मूल्य 25/-

पर्युषण-प्रवचन : श्री चन्द्रप्रभ

पर्युषण-पर्व के प्रवचनों को घर-घर पहुँचाने वाला एक प्यारा प्रकाशन। पढ़ें, कल्पसूत्र को अपनी भाषा में।

पृष्ठ 112, मूल्य 25/-

आंगन में प्रकाश : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

तीस प्रवचनों का अनूठा आध्यात्मिक संकलन, जो आम आदमी को प्रबुद्ध करता है। और जोड़ता है उसे अस्तित्व की सत्यता से।

पृष्ठ 200, मूल्य 35/-

स्वयं से साक्षात्कार : श्री चन्द्रप्रभ

आत्म-ज्ञान और आत्म-विकास के लिए पढ़िए इस चर्चित पुस्तक को।

पृष्ठ 136, मूल्य 25/-

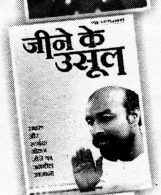

जीने के उसूल : श्री चन्द्रप्रभ

सफल और सार्थक जीवन जीने का अनमोल खजाना। जीने की दृष्टि, शक्ति और प्रेरणा देने वाली चर्चित पुस्तक।

पृष्ठ 144, मूल्य 25/-

धर्म, आखिर क्या है : श्री ललितप्रभ सागर

अमृत प्रवचन, जो हमें वर्तमान सन्दर्भों में जीवन जीने की कला प्रदान करते हैं।
पुस्तक महल दिल्ली से भी प्रकाशित

पृष्ठ 160, मूल्य 30/-

ज्योति कलश छलके : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

जीवन-मूल्यों को ऊपर उठाने वाली एक प्यारी पुस्तक । भगवान महावीर के सूत्रों पर प्रवचन ।

पृष्ठ 160, मूल्य 30/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

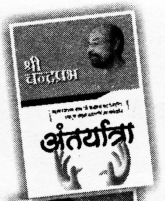

सो परम महारस चाखै : श्री चन्द्रप्रभ
आनन्दघन के अध्यात्म-रसिक पदों पर बेहतरीन प्रवचन। पढ़िये, अंधेरे से प्रकाश में ले जाती इस पुस्तक को।
पृष्ठ 134, मूल्य 25/-

श्री चन्द्रप्रभ की श्रेष्ठ कहानियाँ : श्री ललितप्रभ
श्री चन्द्रप्रभ की श्रेष्ठ कहानियों का प्यारा संकलन। पुस्तक जो संपूर्ण देश में पढ़ी जा रही है।
पृष्ठ 102, मूल्य 25/-

जरा मेरी आँखों से देखो : श्री ललितप्रभ सागर
सर्वधर्म के अमृत संदेशों को उजागर करते हुए नैतिक मूल्यों से रू-ब-रू करवाती श्रेष्ठ पुस्तक। सबके लिए प्रेरक और पठनीय
पृष्ठ 100, मूल्य 25/-

प्रेरणा : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर
आध्यात्मिक संतों के जीवन से जुड़े प्रेरक प्रसंग। सहज में पाइए धर्म-अध्यात्म की दृष्टि।
पृष्ठ 100, मूल्य 25/-

कैसे बनाएँ समय को बेहतर : श्री चन्द्रप्रभ
समय का हर दृष्टि से मूल्यांकन करते हुए समयबद्ध जीवन जीने की प्रेरणा देने वाली पुस्तक।
पृष्ठ : 110, मूल्य 25/-

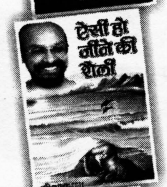

ऐसी हो जीने की शैली : श्री चन्द्रप्रभ
जीवन और धर्म-पथ को परिभाषित करते हुए जीने की साफ-स्वच्छ राह दिखाती अनूठी पुस्तक।
पृष्ठ 160, मूल्य 30/-

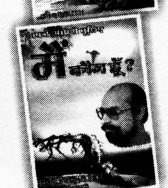

मैं कौन हूँ : श्री चन्द्रप्रभ
वे प्रवचन जो हमें दिखाते हैं अध्यात्म और आत्म-रूपांतरण का रास्ता।
पृष्ठ 100, मूल्य 25/-

कैसे पाएँ मन की शांति : श्री चन्द्रप्रभ
चिंता, तनाव और क्रोध के अंधेरे से बाहर लाकर जीवन में शांति, विश्वास और आनंद का प्रकाश देने वाली बेहतरीन जीवन-दृष्टि।
पृष्ठ 116, मूल्य 25/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

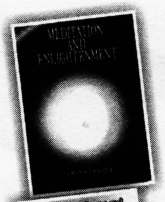

Meditation And Enlightement : Shree Chadraprabh

A guide to acquiring mental peace and spiritual growth.

Page 110, Price 40/-

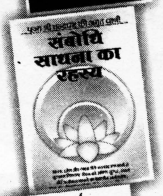

संबोधि-साधना का रहस्य : श्री चन्द्रप्रभ

जीवन को अधिक सुंदर, स्वस्थ और ऊर्जावान बनाने का बेहतरीन मार्गदर्शन।

पृष्ठ 100, मूल्य 25/-

अप्प दीपो भव : श्री चन्द्रप्रभ

जीवन, जगत और अध्यात्म के विभिन्न आयामों को उजागर करती पुस्तक। श्रेष्ठ सूक्त वचन

पृष्ठ 136, मूल्य 25/-

ध्यान : साधना और सिद्धि : श्री चन्द्रप्रभ

साधकों को सम्बोधित प्रवचन एवं ध्यानयोग-साधना के अभ्यासक्रम का संचयन।

पृष्ठ 150, मूल्य 30/-

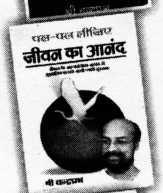

पल-पल लीजिए जीवन का आनंद : श्री चन्द्रप्रभ

जीवन के आध्यात्मिक आनंद से मुख़ातिब कराने वाली प्यारी पुस्तक।

पृष्ठ 104, मूल्य 25/-

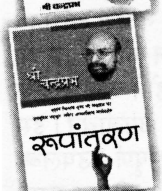

रूपान्तरण : श्री चन्द्रप्रभ

जीवन के वास्तविक रूपांतरण के लिए सुझाए गए महत्वपूर्ण पहलुओं का मानक संकलन।

पृष्ठ 144, मूल्य 25/-

कैसे सुलझाएं मन की उलझन : श्री ललितप्रभ सागर

चिंता, क्रोध और तनाव जैसी समस्याओं से छुटकारा दिलाने वाली एक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक।

पृष्ठ 140, मूल्य 25/-

ध्यान : श्री चन्द्रप्रभ

बेजान ज़िंदगी में आध्यात्मिक शक्ति फूंकने वाली बेहतरीन पुस्तक, जो देती है हमें ध्यान और योग का प्रेक्टिकल स्वरूप।

पृष्ठ 140, मूल्य 25/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

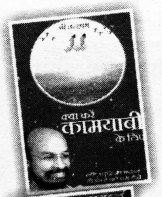

क्या करें कामयाबी के लिए : श्री चन्द्रप्रभ

कामयाबी के लिए हर रोज नई प्रेरणा देने वाली एक सुप्रसिद्ध पुस्तक।

पृष्ठ 100, मूल्य 25/-

सकारात्मक सोचिए, सफलता पाइये : श्री चन्द्रप्रभ

स्वस्थ सोच और सफल जीवन का द्वार खोलती लोकप्रिय पुस्तक।

पृष्ठ 120, मूल्य 25/-

फिर महावीर चाहिए : श्री चन्द्रप्रभ

महावीर अतीत की नहीं वर्तमान की आवश्यकता है। फिर से समझिए महावीर को।

पृष्ठ 96, मूल्य 25/-

महान जैन स्तोत्र : महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

महान चमत्कारी धार्मिक स्तोत्रों का अनुपम ख़ज़ाना।

पृष्ठ 125, मूल्य 25/-

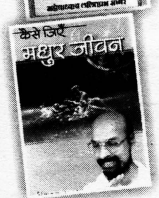

कैसे जिएँ मधुर जीवन : श्री चन्द्रप्रभ

सुमधुर और सुव्यवस्थित जीवन जीने की कला सिखाने वाली बेहतरीन पुस्तक।

पृष्ठ 120, मूल्य 25/-

विशेष — अपने घर में अपना पुस्तकालय बनाने के लिए फाउंडेशन ने एक अभिनव योजना बनाई है। इसके अंतर्गत आपको सिर्फ एक बार ही फाउंडेशन को पच्चीस सौ रुपए देने होंगे, जिसके बदले में फाउंडेशन अपने यहाँ से प्रकाशित होने वाले प्रत्येक साहित्य को आपके पास आपके घर तक पहुंचाएगा और वह भी आजीवन। इस योजना के सदस्य बनते ही आपको फाउंडेशन द्वारा प्रकाशित संपूर्ण 'उपलब्ध साहित्य' नि:शुल्क प्राप्त होगा। ध्यान रहे, साहित्य वही भेजा जा सकेगा जो उस समय स्टॉक में उपलब्ध होगा। इस योजना के अन्तर्गत संबोधि टाइम्स पत्रिका भी आपको आजीवन नि:शुल्क प्राप्त होगी।

रजिस्ट्री चार्ज एक पुस्तक पर 20 रुपये, न्यूनतम दो सौ रुपये का साहित्य मंगाने पर डाक व्यय संस्था द्वारा देय। धनराशि Sri Jityasha Shree Foundation के नाम ड्राफ्ट बनाकर जयपुर के पते पर भेजें। वी.पी.पी. से साहित्य भेजना शक्य नहीं होगा। आज ही अपना ऑर्डर निम्न पते पर भेजें-

श्री जितयशा श्री फाउंडेशन

बी-7, अनुकम्पा द्वितीय, एम.आई. रोड़, जयपुर - 302 001 फोन : 2364737

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

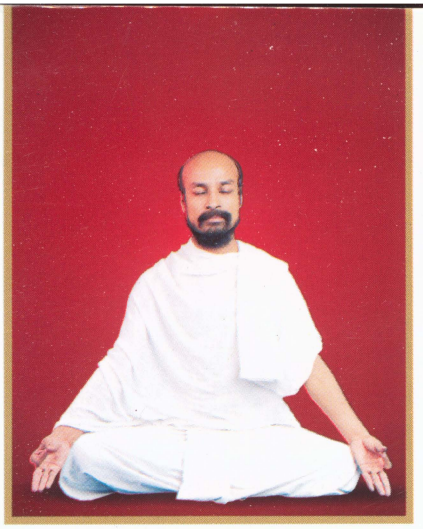

ध्यान का विज्ञान

ध्यानयोग पर समग्र मार्गदर्शन

ध्यान उस हर इंसान के लिए उपयोगी है जो अपने लिए मन की शांति और आध्यात्मिक प्रकाश का द्वार खोलना चाहता है। इंसान के सामने केवल मन और बुद्धि के ही द्वार खुले हुए हैं। इससे आगे के द्वार उसके लिए बंद जैसे हैं। हृदय और आत्मा के अतीन्द्रिय द्वारों की ओर तो उसकी नज़र ही नहीं है। डॉक्टर केवल शरीर और दिमाग की चिकित्सा कर सकता है। ध्यान के पास उन रोगों का भी समाधान है जिसे हम अपनी भाषा में क्रोध, क्रूरता, चिंता, ईर्ष्या, लालसा, तनाव और वासना कहते हैं।

ध्यान वास्तव में स्वयं से साक्षात्कार है, स्वयं की सच्चाइयों से साक्षात्कार है। ध्यान के जरिए हमारे भीतर सहजता, शांति और आनंद का उदय होता चला जाता है। महान जीवन-द्रष्टा पूज्य श्री चन्द्रप्रभ ने अपने इन दिव्य प्रवचनों के द्वारा ध्यान की हर बारीकी पर रोशनी डाली है। उन्होंने स्वयं ने तो ध्यान को आत्मसात किया ही है, हज़ारों लोगों को भी ध्यान की शांति, शक्ति और सच्चाई से साक्षात्कार करवाया है। यह पुस्तक 'ध्यान का विज्ञान' आपके लिए रोशनी डालने वाली टॉर्च का काम करेगी। यदि किसी इंसान के पास ध्यान की रोशनी हो तो वह भला अपने मन के अंधे गलियारों की कहाँ परवाह करेगा!

SPIRITUAL BOOK

₹ 30

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org